।। ओउम ।।

ब्रह्म विज्ञान

ईश्वर की सृष्टि के अद्भुत व्याख्याता पूज्यपाद गुरूदेव श्रृंगी मुनि कृष्णदत जी महाराज द्वारा विशेष योग समाधि मे,देवयान की आत्माओ को सम्बोधित प्रवचनो का संकलन
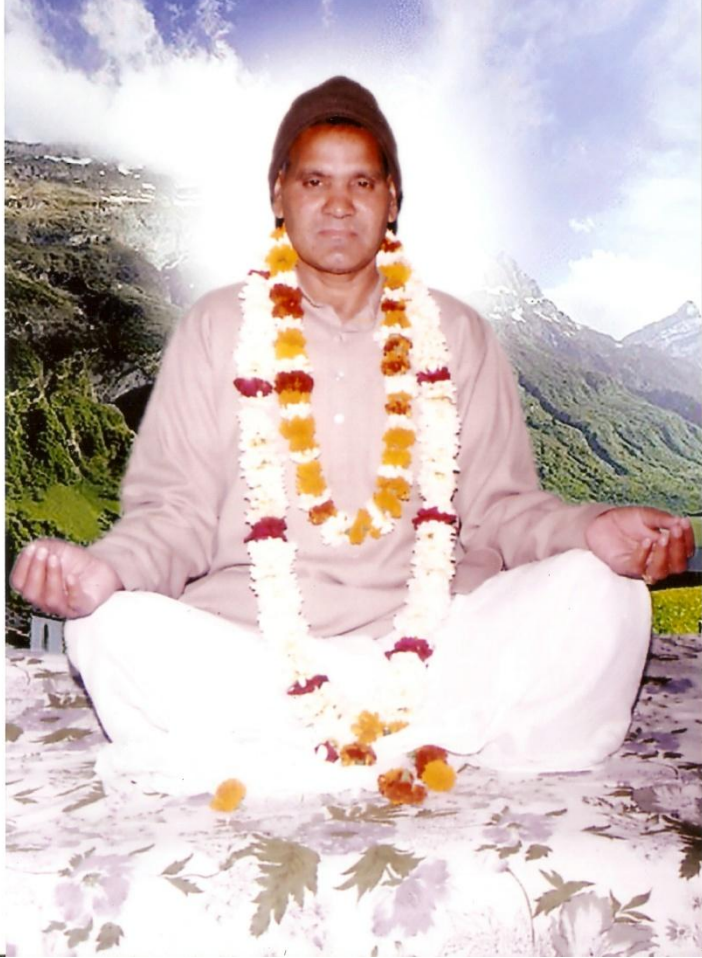
प्रकाशक :
वैदिक अनुसन्धान समिति(रजि.)
अन्तरजाल सम्पादक : श्री सुकेश त्यागी – अवैतनिक
अन्तरजाल विशेष सहयोग : डा0सतीश शर्मा (अमेरिका) – अवैतनिक
अन्तरजाल पुस्तक संस्करण : प्रथम प्रेषण
सृष्टि सम्वत् : 1,96,08,53,111
विक्रम सम्वत् : अश्विन शुक्ल पंचमी,2067

गुरुदेव का जीवन

14 सितम्बर 1942,उतर प्रदेश के गाजियाबाद जिले के ,ग्रम खुर्रमपुर सलेमाबाद मे एक बालक का जन्म हुआ ।

बालक जन्म से ही एक विलक्षण से युक्त था और विलक्षणता यह कि जब भी वह बालक सीधा, शवासन की मुद्रा मे, कुछ अन्तराल लेटजाता या लिटा दिया जाता तो उसकी गर्दन दायें बायें हिलने लगती , कुछ मन्त्रोच्चारण और उसके बाद पुरातन संस्कृति पर आधारित 45 मिनट के लगभग एक दिव्य प्रवचन होता । बाल्यावस्था होने के कारण, प्रारम्भ मे आवाज अस्पष्ट होती और जैसे आयु बढने लगी वेसे ही आवाज और विषय दानो स्पष्ट होने लगे । पर एक अपठित बालक के मुख से ऐसे दिव्य प्रवचन सुनकर जनमानस आश्चर्य करने लगा , इस बालक की ऐसी दिव्य अवस्था और प्रवचनो की गूढता के विशय मे कोई भी कुछ कहने की स्थिति मे नही था । प्रवचन सुनकर जनमानस आश्चर्य करने लगा , इस बालक की एंसी दिव्य अवस्था और प्रवचनो की गूढता के विषय मे कोई भी कुछ कहने की स्थिति मे नही था ।

इस स्थिति का स्पष्टीकरण भी दिव्यात्मा के प्रवचनो से ही हुआ । कि यह सृष्टि के आदिकाल से ही विभिन्न कालो मे श्रृंगी ऋषि की उपाधि से विभूशित और सतयुग के काल मे आदि ब्रह्म के शाप के कारण इस युग मे जन्म का कारण बनी । गुरुदेव इस जन्म मे भले ही अपठित रहे,लेकिन शवासन की मुद्रा मे आते ही इनका पूर्वजन्मित ज्ञान,उदबुद्ध हो जाता और अन्तरिक्ष–स्थ आत्माओ का दिव्य उद्बोधन ,प्रवचन करते और शरीर की स्थिति यहाॅ होने के कारण हम सबको भी इनकी दिव्य वाणी सुनाई देती । इन पंवचनो मे ईश्वरीय की सृष्टि का अद्भुत रहस्य समाया हुआ है , ब्रह्माण्ड की विशालता , सृष्टि का उद्देष्य,विभिन्न कालो का आंखो देखा वर्णन भगवान राम और भगवान कृष्ण के जीवन की दिव्यता का दर्शन क्या कुछ दिव्य न हीं है इन प्रवचनो मे ये किसी भी मनुष्य का,समाज का और राष्ट्र का मार्ग दर्शन करने का सामर्थ्य रखते है ।

20 वर्ष की अवस्था तक ये प्रवचन ऐसे ही जनमानस को आश्चर्य और मार्गदर्शन करते रहे ।

दिल्ली के कुछ प्रबुद्ध महानुभवो ने प्रवचनो की इस निधि को शब्द ध्वनि लेखन उपकरण के द्वारा संग्रहित करके ,पुस्तक रूप मे प्रकाशित करने का निश्चय किया, जिसके लिए वैदिक अनुसन्धान समिति नामक संस्था का गठन किया । जिसके अर्न्तगत सन् 1962 से प्रवचनो को संग्रहति और प्रकाशन प्रारम्भ हुआ । इस दिव्यात्मा ने पूर्व निर्धारित 50 वर्ष के जीवन को भोगकर सन् 1992 मे महाप्रयाण किया ।

इस अन्तराल इनके 1500 प्रवचन, शब्द ध्वनि लेखित यन्त्र के द्वारा ग्रहण किये गये । जिनको धीरे–धीरे प्रकाशित किया जा रहा है।वैदिक जीवन और वैदिक संस्कृति का जो स्वरूप इनमे समाया हुआ है । उसके सम्वर्धन , संरक्षण और प्रसारण के लिए हर वैदिक धर्मी के सहयोग की अपेक्षा है । जिससे वसुधैव कुटुम्बकम की संस्कृति से निहित यह महान ज्ञान जनमानस मे प्रसारित हो सके।

वैदिक अनुसन्धान समिति (रजि.)

ब्रह्म विज्ञान

श्रावणी का महत्त्व

जीते रहो,

देखो, मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भाँति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद–मन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद–वाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है, क्योंकि बेटा! वे महिमावादी, अनुपम मानो यज्ञोमयी–स्वरूप माने गये हैं। मुनिवरो! देखो, परमपिता परमात्मा के सम्बन्ध में जिस प्रकार भी मानव कल्पना करना चाहता है उसी रूपों में वे परमपिता परमात्मा दृष्टिपात् आने लगते हैं। उनको यज्ञोमयी–स्वरूप स्वीकार करोगे तो वे यज्ञोमयी–स्वरूप दृष्टिपात् आने लगते हैं, उसके विज्ञानमयी–स्वरूप का वर्णन करने लगोगे तो वे विज्ञानमयी दृष्टिपात् आने लगते है। परन्तु उसको क्रिया में लाने वाला, क्रियाशीलता में दृष्टिपात करते हैं तो वे सर्वत्र क्रियाओं का एक मूलक कहलाये गये है।

यज्ञोमयी पवित्रता

तो मुनिवरो! देखो, वह मेरा देव, परमपिता परमात्मा है उसके जब गुणों के गुणावधान में हम प्रवेश करते हैं, तो जिस भी गुण से उसकी कल्पना करते हैं उसमें वे अनन्तमयी दृष्टिपात आने लगते है। जैसे हमारे यहाँ आज का वेद मन्त्र यज्ञोमयी–पवित्रता की चर्चा कर रहा था और यह उच्चारण कर रहा था कि प्रभु यज्ञोमयी स्वरूप है। वह मेरे प्यारे! 'विज्ञानां भविते देवाः' वह यज्ञोमयी–स्वरूप माना गया है और यज्ञोमयी में भी पवित्रतम् में उसकी कल्पना की जाती है। वह विज्ञानवेत्ता है, विज्ञानमयी–स्वरूप है मानो वह योगेश्वर में योग–सर्वस्व है। तो इसीलिये हम उस परमपिता परमात्मा की अपने में आराधना करते चले जाएँ और मुनिवरो अपने प्यारे प्रभु का गुणावधान करते हुए, उस परमपिता परमात्मा की महती का हम सदैव वर्णन करते चले जाएँ और उसको अपना वरणीय स्वीकार करते हुए, अपने में उसे धारण करते हुए, संसार सागर से पार हो जाये।

तो आओ, मेरे पुत्रो! विचार विनिमय क्या है? कि उस परमपिता परमात्मा के गुणों को हमें अपने में धारण करना चाहिए। आज का हमारा वेद मन्त्र क्या कह रहा था। आज का वेद मन्त्र कुछ यागों के सम्बन्ध में चर्चा कर रहा था। मेरे प्यारे महानन्द जी भी मुझे प्रेरणा दे रहे थे। वेदों के पठन पाठन का जो क्रिया कलाप अथवा उसमें जो यज्ञोमयी–स्वरूप का वर्णन आ रहा था वह बड़ा विचित्रतम माना गया है। प्रत्येक मानव यज्ञोमयी अपनी आभा को ऊँचा बनाना चाहता है। हमारे यहाँ परम्परागतों से यागों का बड़ा चलन और उनमें बड़ा विचित्र विज्ञान सदैव निहित रहा है। प्रत्येक मानव उसके ऊपर कल्पना अथवा अपनी धारा का वर्णन करता रहा है। परन्तु आज का हमारा वाक् ''यज्ञोमयी कर्मणां देवाः' यज्ञ के भिन्न–भिन्न प्रकार के स्वरूपों का वर्णन हमारे यहाँ प्रायः वैदिक साहित्य में आता रहता है।

आज मैं कोई विशेष चर्चा प्रगट नहीं करूँगा। आज मेरे प्यारे महानन्द जी अपने कुछ उद्गार प्रगट करेंगे। इनका विचार सदैव प्रेरणादायक और महानता की प्रतिभा का प्रतिशोध कहलाया जाता है। तो आज का हमारा वाक्य क्या कहता है–कि हम परमपिता परमात्मा की जिस सम्बन्ध में कल्पना करने लगेंगे। वे प्रायः हमें उसी में प्राप्त हो जाते है। परन्तु आज मेरे प्यारे महानन्द जी अपने उद्गार प्रगट करेंगे।

श्रावणी–पर्व का आधार

(पूज्य महानन्द जी) मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि–मण्डल! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी–अभी परमपिता परमात्मा के सम्बन्ध में अपने उद्गार प्रगट कर रहे थे। परन्तु मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो सदैव प्रभु के सम्बन्ध में अथवा उसके यौगिक रूपों का वर्णन, परम्परागतों से ही इनका एक विषय रहा है और उस विषय के ऊपर ही अपना आधिपत्य करते रहे हैं। जहाँ इनकी विज्ञानमयी, इतनी ऊँची उड़ान परमपिता परमात्मा के सम्बन्ध में प्रायः रही हैं, परन्तु आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को कुछ परिचय देने आया हूँ और वह परिचय क्या है? कि आज का दिवस रक्षाबन्धन दिवस अथवा श्रावणी कहलाता है। इसको हमारे यहाँ श्रावणी के रूपों में, श्रावणी व्रत भी कहा जाता है। ऐसा हमारे यहाँ परम्परागतों से कल्पना मानी गई है। इस दिवस को हमारे यहाँ रक्षाबन्धन के रूपों में भी परिणत किया जाता है। हो सकता है कि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव रक्षाबन्धन के शब्द को न जानते हो। परन्तु इसकी कल्पना की गयी है।

परन्तु मैं आज इसकी कल्पना को विशुद्ध रूपों से वर्णन कराने के लिये आया हूँ कि मानव का पर्व इतनी दूरी पर कहाँ चला जाता है। विचार आता रहता है, कल्पनाएँ नाना प्रकार की हैं, कोई तो यह कल्पना करता है कि जब अभिमन्यु ने महाभारत संग्राम के लिये कुरूक्षेत्र में, संग्राम के लिये गमन किया, तो माता कुन्ती के इस बन्धन को बांधकर के प्रस्थान किया।

कुछ मानव के हृदय में यह कल्पना रही है कि यह भगिनी और विधाता का एक पर्व है। पुत्रियाँ अपने विधाताओं के भुजों में इस बन्धन की प्रतिकरणस्ते, इसलिये कि मेरी रक्षा होनी चाहिए।

परन्तु इस सम्बन्ध में मेरा कुछ विचार भिन्न रहा है। सबसे प्रथम तो रक्षार्थी परमपिता परमात्मा ही है, जो मानव को, माता के गर्भ स्थल में ही सूत्र में कर देता है। वह सूत्र में प्रतीति होने लगती है। जैसे हमारे यहाँ 'माता पितरं ब्रहे भोजै के सम्बन्ध में ऐसी कल्पना की जाती है कि वह माता की रक्षा, भोजै की रक्षा, विधाता की रक्षा के लिये है परन्तु रक्षार्थी प्रभु है। मानव एक दूसरे में रक्षार्थी बना हुआ है, परन्तु इस सम्बन्ध में और भी कल्पना करते हैं, तो विचित्र, विचित्र कल्पनाएँ हमारे समीप आने लगती हैं। परन्तु हमारा विचार इन दोनों कल्पनाओं से भिन्न रहता है।

षोड़श–कलाएँ

हमने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव के चरणों में ओत–प्रोत हो करके इस विद्या को हमने अपने में धारण किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि जिसे आज हम रक्षाबंधन का दिवस कहते हैं, वह एक पूर्णिमा दिवस जैसे चन्द्रमा अपनी सम्पन्न कलाओं से परिपक्व रहता है, वह अपनी सम्पन्न कलाओं को ले करके संसार को सौम्य बनाता है। इसी प्रकार मानव के द्वारा भी षोड़श कलाओं वाला, यह मानव शरीर कहलाता है, और षोड़श कलाओं को जान करके योगेश्वर बन जाता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने यह कल्पना की थी।

यज्ञोपवीत

परन्तु हमारा इन दोनों विचारों से भिन्न भी एक मार्ग है और वह यह है कि आज का दिवस केवल यज्ञोपवीत के लिये कहलाया जाता है। इस दिवस यज्ञोपवीत को ब्रह्मचारी को धारण कराना चाहिए। यह उपनयन संस्कार की पद्धति मानी जाती है, जिसमें उपनयन कराया जाता है, जब आचार्य कुल में ब्रह्मचारी का प्रवेश होता है। तो पूर्णिमा के दिवस ब्रह्मचारी को बन्धनसूत्र में कटिबद्ध कर दिया जाता है और वह बन्धन सूत्र कौन सा है? वह पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे वर्णन कराया कि यह वह यज्ञोपवीत है। जिस यज्ञोपवीत में तीन प्रकार के सूत्रों का वर्णन आता रहता है, और तीन सूत्रों में भी तीन–तीन की

प्रतिभा आती रहती है और तीन–तीन को ले करके इस ब्रह्मग्रन्थि का वर्णन आता है। परन्तु देखो, यज्ञोपवीत में यह ग्रन्थि है, तीन–तीन धागे हैं, इनके तीन–तीन धागे ओर बना करके, इस प्रकार नौ बन जाते हैं।

तो हमारे यहाँ इसका अभिप्राय यह है कि पांच ज्ञानेन्द्रियों को जान करके, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन, काल, दिशा, आत्मा, यह हमारे यहाँ देखो, नौ कृतिका कहलाती हैं, और नौ कृतिका बन जाती हैं। परन्तु देखो, ये तीन में कटिबद्ध कर दी जाती हैं। यह तीनों में कटिबद्ध हैं। क्योंकि कुछ पितरों का स्थान है इसमें। कुछ ऋषियों का स्थान, "पितर यागां ब्रह्म वाचो" कोई ऋषियों की प्रतिभा है, कुछ परमपिता परमात्मा का ऋण है।

तो मुझे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने बहुत पुरातन काल हुआ, जब मैं चरणों में ओत–प्रोत रहता था, तो इस विद्या का अग्न्याधान करते रहते थे। इस विद्या के ऊपर सदैव हमारा आधिपत्य होता और विचारते रहते कि प्रायः वास्तव में ऐसा ही है। तो यज्ञोपवीत का अभिप्राय यह है कि हम यज्ञ के समीप विद्यमान हो जाये। तीनों गुणों की वृत्तियों को ले करके यह दिशा और काल पंचमहाभूत मुनिवरो! देखो, यह तीनों गुणों की प्रतिभा का प्रतिपादन करते हैं। इसका मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मुझे वर्णन कराते रहे हैं। रजोगुण, सतोगुण, तमोगुण की प्रतिभा में यह प्रतिष्ठित रहता है। तो जब यह प्रतिष्ठित रहता है तो तीनों गुणावधानम्, यह तीनों गुणों को धारण करने वाला त्रिगुणा कहलाता है और यह जो नौ पदार्थ मैंने अभी–अभी तुम्हें वर्णन किये यह तीन गुणों में गुणावधानम् हो रहे हैं। इसी का नाम देखो, अन्न में भी और प्राणों में भी एक विज्ञानमयी धारा बन जाती है, और एक पवित्रता की आभा में मानव रमण करने लगता है।

ऋण

तो इसीलिये आज का हमारा वाक् क्या कहता है? परमपिता परमात्मा की आराधना में, पूज्यपाद गुरुदेव मुझे स्मरण कराते रहते हैं; परन्तु विचार यह है कि तीनों गुणों को मानव धारण करे। इसीलिये तीन अप्रेती ऋण कहलाते हैं। देखो, पितृऋण है, ऋषिऋण है और देवऋण कहे जाते हैं। देवता हमारे यहाँ कौन हैं? ऋषि कौन है? ऋषि उसे कहते हैं जो अपने में अनुसन्धान करता हो अथवा विचारक होते हुए, उनकी लेखनी को अपने में अध्ययन करना, अपने में उन्हें धारण करना ऋषि ऋण से उऋण होना है।

इसीलिये मैं उच्चारण कर रहा था कि पितृऋण, ऋषिऋण और देवऋण मेरे 'अकृतां भविते देवाः' शरीर में देवऋण हो रहा है। इन देवताओं का भी ऋण हमारे शरीरों में प्रवेश करके बाह्यजगत और आन्तरिकजगत् दोनों को सुखद बना करके महानता की ज्योति मानव के मध्य में प्रवेश हो जाती है।

उऋणता परमावश्यक

विचारना यह है कि मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से वर्णन कर रहा हूँ कि आज वह दिवस है, जब सृष्टि के प्रारम्भ में मेरे पिता ने, परमपिता परमात्मा ने सृष्टि का सृजन किया। तो हमारे यहाँ ये जो आर्य सज्जनों का मानव समाज है, यज्ञोपवीत को धारण करके, तीनों ऋणों से उऋण होने के लिये प्रयास करना है। इस पर्व की महत्ता आचार्यों ने स्वीकार की है कि तीनों गुणों के ऊपर जीवन को न्यौछावर कर देता है विचित्रता में। जैसे आज जिस स्थली पर हमारी यह आकाशवाणी जा रही है। वहाँ यागों का चलन। यागों को प्रतिभा का वर्णन प्रायः आ रहा था। परन्तु मैं सदैव यह कहा करता हूँ हे याज्ञिक पुरूषो! तुम्हारा जीवन अखडता की ज्योति में परिणत रहे। हे यज्ञवेत्ताओ! तुम्हारी प्रत्येक इन्द्रिय याग में परिणत होनी चाहिए। "यागां भविते देवाः" याग में परिणत होनी चाहिए। यागों से सम्पन्न होनी चाहिए। हे यजमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। क्योंकि तेरे जीवन की प्रतिष्ठा उस महान विचित्र चलन में स्वीकार की जाती है। क्योंकि हे यजमान! तेरे जीवन की प्रतिभा सदैव मानवीयता में प्रदर्शन और महानता की ज्योति पर रमण करने वाली है। हे यजमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखंड बना रहे।

याग से जीवन की भव्यता

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने नाना प्रकार के यागों का चयन अथवा चलन मानो पुरातन काल में ही प्रगट कराया, तो इसीलिये प्रत्येक मानव को अपने जीवन में विचार करके इस मानव पद्धति को महान बनाना चाहिए, विचित्र बनाना चाहिए। जिससे महानता की ज्योति का प्रायः दर्शन हो जाये। उस दर्शन में प्रवेश करने से हमें एक मानवीयता, भव्यता दृष्टिपात आने लगेगी। तो इसको हमारे यहाँ यज्ञोपवीत करते हैं, जो यज्ञ के समीप लाने का प्रयास करता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने याग की बहुत ऊँची–ऊँची विवेचनाएँ प्रगट कीं। परन्तु आज मैं देखो, विशेष चर्चा देने नहीं आया हूँ, केवल यह विचार देने के लिये आया हूँ कि प्रत्येक मानव के हृदय में प्रसन्नता रहनी चाहिए, विचारता रहनी चाहिए। जिससे मानव अपने महान सुखदर्शन को ले करके, इस संसार सागर से पार होने का प्रयास करता रहे।

याज्ञिकवाद

तो विचार विनिमय क्या है? आज मैं विशेषता में विचार प्रगट करने नहीं आया हूँ। विचार यह देने के लिये आया हूँ कि प्रत्येक मानव को याज्ञिक बनना चाहिए। 'यागां भविते देवाः' हे यजमान! तू याग कर्म करता हुआ। अग्न्याधान करता हुआ, अपने रथ में विद्यमान हो करके तू, द्यौ–लोक को चल। द्यौ–लोक में तेरा विचरण होगा, वहीं तेरी शैय्या लगेगी। 'यज्ञो भवाः तं ब्रह्मे वाचाः' हे यजमान! वहीं तेरे जीवन की प्रतिभा है, तेरे जीवन की महानता है। हम भी अपनी आभा में वरण करते हुए सम्भूति प्रतिभाओं में रमण करते चले जाएं। क्योंकि हे यजमान! मेरा अन्तर्हृदय कहता रहता है, यजमान के प्रति, मेरे हृदय की उत्कण्ठा सदैव बनी रहती है। मैं अपने में यह स्वीकार करता रहता हूँ कि वह प्रभु कितना अनुपम, कितना महान, कितना देवत्व को प्राप्त होने वाला है। वेद का वाक्य कहता है, ऋषि कहता है कि अपनी आभा में मानव को परिणत हो जाना चाहिए। हे यज्ञोमयी श्रेष्ठ! हे यज्ञोमयी प्रतिभा! तू, अन्तरिक्ष में विचरण करने वाला है, तू द्यौ लोक में प्रवेश करने वाला है, तेरी महानता का मुझे प्रतीत नहीं कितनी महानता तेरे द्वार पर है।

मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कई काल में यह प्रगट कराया कि यज्ञोपवीत का यह जो दिवस है वह हमारे यहाँ देखो, यज्ञ कर्म करने के पश्चात् इसको सदैव अपनाने की प्रवृत्ति बनी रहती है। तो इसीलिये विचार यह है कि मानव को विचित्रता की आभा में परिणत हो जाना चाहिए। परन्तु अपने हृदय से, अपनी कटुता से कोई भी वाक् उच्चारण न हो जाये। जिससे अमानवीयता हमारी वृत्तियों में परिणत हो जाये।

तो आज का वेद का मन्त्र कहता है पूज्यपाद गुरुदेव अभी–अभी वर्णन करा रहे थे, अपनी आभा में प्रगट कर रहे थे कि हमारा जीवन कितना महान, कितना ऊँचा, कितनी विचित्रता वाला होना चाहिए। इस सम्बन्ध में भ्रमण करते हुए एक समय कागभुशुण्डी जी के द्वार पर पहुँचे, कागभुशुण्डी जी से कहा कि महाराज! हमारे कल्याण का भी तो कोई मार्ग होना चाहिए? किन्तु देखो, उसको पान करते हुए उन्होंने कहा 'सम्भवा देवो वाचन्नं ब्रह्मवाचो दिव्यं गत्प्रमाणाः लोकां वाचो सम्भवाः'।

मेरे प्यारे पूज्यपाद गुरुदेव! मैंने आपको कई काल में वर्णन कराया! आज भी मुझे बारम्बार बाध्य करने लगे कि यह प्रियता मुझे प्रतीत नहीं हो रही है। परन्तु जो क्रिया कलाप, वस्तुओं में रहने वाले अस्सुतम् कहलाते है, परन्तु वह अपने में विचित्रतम का पठन–पाठन करते रहते हैं आज मैं आपको ऐसी स्थली पर ले जाना चाहता हूँ जहाँ ऋषि मुनि अपने में मानो प्रतिष्ठित हो करके प्रकाश को अपनाते रहे। प्रकाश को अपनाने में अपनी–अपनी धारा का प्रायः वर्णन करते रहे हैं।

एकता में आनन्द

तो विचार विनिमय क्या? हे यजमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। तू तीनों प्रकार की धाराओं को अपना करके अपने राष्ट्र और समाज को ऊँचा बनाना चाहता है। तू वाचन्नमं सिद्धामि इसका अभिप्राय यह है कि इसको सदैव पान करता रहे, आनन्दित होता रहे और अपने गृह में एक आनन्द का प्रभाव होना चाहिए। जिससे देखो, जीवन की प्रतिभा में एकत्रिता का हमें दिग्दर्शन होता रहे।

याज्ञिक–वैज्ञानिक

मैं उस काल में नहीं जाना चाहता हूँ। जब एक पंक्ति में विद्यमान हो करके ब्रह्मचारी जन एक याग कर्म करते रहते थे और उन यागों का ''प्रश्नः पृथिवीं वसु वाचन्नमं वृधवाचाः'' हम उसकी आधारभूत सम्भूतियों में रमण करने के लिये सदैव ग्रहण करने लगते हैं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे वर्णन कराया कि आधुनिक जगत् की प्रतिभा समाप्त होने जा रही है। मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह वर्णन कराया तो पूज्यपाद गुरुदेव द्वारा बहुत–सी वार्ताएँ उनसे प्रगट होने लगीं। उनकी वार्ता में एक मधुप्रियता थी उनकी वाणी में ओजस् और तेज की प्रतिभा का प्रायः दर्शन होता रहता है। हे यजमान! तू आ, अपने विज्ञानमयी स्वरूप को ऊँचा बना, तू वैज्ञानिक बन, तू विज्ञान के जो तत्त्व हैं उनको ग्रहण करके अपने, जीवन को उज्ज्वलता की ज्योति पर ले चल। परन्तु इस प्रकार यह ज्योतिवान है, यह जो मानव की ज्योति है यह अभ्युदय होने वाली है। सम्भूति, हमें प्रदान करने वाली है इससे हमारा जीवन एक विचित्र धारा में गति करता रहे।

आओ, देखो, मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह वाक् प्रकट कराया। मैं विशेष चर्चा प्रगट करने नहीं आया हूँ। विचार यह दे रहा था कि आज जो पर्व है यह यज्ञोपवीत उपनयन का पर्व माना गया है। उपनयन संस्कार इसी की आभा में परिणत होते थे परन्तु देखो, उसकी आभा में रमण करते–करते दूरी चले जाते हैं तो विचारों में भिन्नता हो जाती है, उन विचारों की भिन्नता होने पर नाना प्रकार की भिन्नता का जन्म हो जाता है।

संसार की वास्तविकता

मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह विचार देने के लिये आया हूँ कि हे मानव! हे यजमान! तू अपने याग को पवित्र बना। यह संसार तो परम्परागतों से इसी प्रकार गति कर रहा है, गति करता रहेगा, परन्तु गतियों में भिन्न–भिन्न प्रकार की धाराओं का जन्म होता रहता है। उन धाराओं के जन्म होने पर, मानव वृत्तियों में देखो, यह अपनी धारा में अपने को प्रतिभाषित करता हुआ, सान्त्वना को प्राप्त करा रहा है। ऐसा देखो, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे कई काल में स्मरण कराया है। परन्तु आधुनिक जगत् इस बात पर लगा हुआ है कि कुछ ऐसी प्रायः वस्तु प्राप्त हो जाएँ। जिससे मेरा रुग्ण चला जाए। रुग्णो सम्भवाः देवोः' यह रुग्णों का विस्तार रूप में वर्णन किया गया है। इसके ऊपर भी अनुसंधान की वेदी पर यह मानव प्रवेश होने लगेगा। जागृति की प्रवृत्ति में आना अनिवार्य है जब प्राण गति करते हैं, तो इनकी गति में एक विचित्र वाक् प्रतिभाषित हो जाता है। उससे यह प्रसन्न युक्त हो करके अपने जीवन की धारा को एक अभ्युदय के क्षेत्र में ले जाता है। वहाँ केवल–ब्रह्म–स्वरूप ही दृष्टिपात आने लगता है, उसे हम ब्रह्मसूत्र भी कहते हैं।

परन्तु देखो, इस प्रकार का जो ब्रह्मसूत्र है वह आभा से युक्त कहलाता है। इसमें कोई सौन्दर्यता, प्रियता नहीं है, केवल अपनी–अपनी आभा में रमण करने वाली एक धारा कहलाती है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मैंने आपसे कई काल में वर्णन कराया जब इसके सूत्र को ले करके मानव गमन करता है। तो उसके जीवन में भिन्न–भिन्न प्रकार की धाराओं का जन्म हो जाता है। और वह जो जन्म लेना है वह हमारे लिये एक महान कठिनता की आभा बन जाती है। उस कठिन आभा में रमण नहीं किया जा सकता। तो मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से वर्णन करा रहा था कि यजमान के कितने स्वरूप मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने वर्णन कराये हैं। परन्तु सूत्रों में बहुत–सी प्रतिक्रियाएँ एक महान और महानता में प्रायः गति करती रहती हैं।

यज्ञ की अनिवार्यता

तो आओ, आज मैं विशेष वाक्यों में नहीं जाना चाहता हूँ। विचार यह देने के लिये आया हूँ कि आज यह रक्षाबन्धन का पर्व माना गया है। यह यज्ञोपवीत का पर्व है। श्रावण पर्व पर प्रत्येक गृह में यज्ञ होना, प्रत्येक विद्यालय में यज्ञ होना और प्रत्येक विद्यालय में यज्ञ होने के पश्चात् उसके ऊपर टिप्पणी करना यह तुम्हारा एक मौलिक तत्व माना गया है। तो विचार विनिमय क्या है? उस मौलिकता के क्षेत्र में रमण करते हुए 'यज्ञापवीत हृष्णो पवित्रवाचाः' जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के यहाँ पठन–पाठन का क्रियाकलाप करता रहता, तो पूज्यपाद गुरुदेव उपनयन कराते थे। यह वही दिवस है, जिस दिवस उपनयन किया जाता है। उपनयन का अभिप्राय यह है कि जिसका उपसंघात बन गया हो, उपधात बन गयी हो, परन्तु वही अपने में पूर्णता को प्राप्त होती रहती है। 'देवा दमन ब्रह्मवाचोः देवं हिरण्यस्थं वृतास्थो सम्भवा देवाः' हे पूज्यपाद गुरुदेव! अपने आप अपने में ही प्रतिष्ठा का प्रतिपादन होता रहता है। परन्तु नाना प्रकार के पर्वो की कल्पना करते हुए पर्व की आभा में रमण करते रहना है। आज यह सूत्र यज्ञोपवीत के रूपों में इसी सूत्र की रक्षा देखो, उस काल में होने लगी थी।

यज्ञोपवीत के ह्रास का दुष्परिणाम

जिस काल में यहाँ देखो, यज्ञोपवीत का ह्रास होने लगा। यज्ञोपवीत के ह्रास का सम्बन्ध तो वाममार्ग के काल में आने लगा था। परन्तु देखो, उसके पश्चात् यहाँ मुहम्मद के मानने वाले जो प्राणी आये, वह जो रूढ़िवादी आये, उन्होंने इस विज्ञान के तथ्यों को जान करके। उन्होंने आचमन करते–करते मानव को इतना विकृत बना दिया कि उसकी कृतियों को सब अपने में पान कर गया। अपने में जब पान कर गया तो मानव आश्चर्य में चकित हो गया। विचार आता रहता है कि पूज्यपाद गुरुदेव मैंने आपसे बहुत पुरातन काल से कहा था, कि आज भी मैं उन वाक्यों की पुनरूक्ति कर रहा हूँ, अपना विचार देता चला जा रहा हूँ और वह विचार क्या है, इसके ऊपर हमारा विचार विनिमय हो रहा था, अन्वेषण हो रहा है, अनुसंधान की प्रतिभा में प्रत्येक मानव प्रतिष्ठित हो जाता है।

आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह वर्णन कराना चाहता हूँ कि उस काल में यज्ञोपवीत को ले करके, अग्नि में दाह करने लगे। वाममार्ग के पश्चात् यहाँ देखो, मुहम्मद के मानने वाले भी वाममार्ग के ही पथिक हैं, उसी आधार पर यह अपने जीवन को व्यतीत करते हैं। जब हमें यह विचार आता है कि प्राणियों में सद्भावना, विचारिता रहनी चाहिए। वह अपनी धारा, अपने ज्ञान का श्रेय प्राप्त हो। तो इसीलिये हे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मैं आपको बहुत–सी नवीन वार्ता अवश्य प्रकट कराऊँगा। विचार देना यह है कि हमारे यहाँ परम्परागतों से अन्वेषण होता रहता है। विचार होता रहता है।

तो मुनिवरो! देखो, वह काल मुझे स्मरण है। पूज्यपाद गुरुदेव को तो प्रतीत है या नहीं, परन्तु वह काल बड़ा विचित्र 'भयं सम्भवाः देवो ब्रह्मणः वाचन्नमः देवो सम्भवाः' उस आभा में मानव परिणत होने लगता है। तो विचारना यह है कि आज हम दूर न जा करके उन क्षेत्रों में अपने में रमण करते हुए चले जाएँ, जिन क्षेत्रों की प्रतिभा में प्रत्येक मानव अपने में भाषित हो जाता है। यहाँ मुहम्मद के मानने वालों ने उसके पश्चात् जो देव वाले थे उनका अश्वासन बना। अश्वासन बना करके देखो, उस रक्षाबन्धन की रक्षा नहीं कर सकते। यह प्राणी इतना धूर्त बन गया कि इतने कालों में यह अपनी प्रतिभा का दर्शन नहीं कर सका है, अपनी ओजस्विता का जब परिचय नहीं दिया जा सका है। परन्तु विचारना क्या है कि हम अपने में अपनेपन को धारण करते हुए चले जाएँ। महाभारत काल के पश्चात् वाममार्ग में इसका वहिष्कार किया और वाममार्ग ने जब वहिष्कार किया तो आगे आने वाला समाज अपने में क्रीत दास बन गये। 'अस्तो मगलं व्रहे' अपने में भ्रमण करने लगे तो उनकी आभा समाप्त हो गई।

विचार केवल यह है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुण–गान गाते हुए जैसा मुझे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने वर्णन कराया है। परन्तु पूज्यपाद गुरुदेव को यह परिचय देना हमारा कर्त्तव्य है कि ये अपने में कितनी घृणा को प्राप्त होते रहे हैं।

तो आओ, ''सम्भूति ब्रह्म वाचो'' सम्भूति अपने में धारण करते हुए इस संसार सागर से पार होने की कल्पना करें। परन्तु देखो, यवनों के मानने वालो ने प्राणियों का ह्रास किया, जिस पर यज्ञोपवीत दृष्टिपात किया, उसी को अग्नि की धाराओं में परिणत कर दिया, वही अग्नि के मुख में प्रवेश कर गया। परन्तु देखो, इसीलिये आतंक होने के कारण इतना आतंक छा गया कि मानव अपने में देखो, मुद्रित हो गया, अपने में अपनी कृतियों में उसी यज्ञोपवीत के स्वरूप की रक्षा, बहन अपने विधाता के रूप में कर रही है। मानो केवल अपने में जो ''दुर्गन्ध न अपृते भवस्वहे,'' अपनी आभा में परिणत होना है।

दुष्परिणामों का विकल्प मात्र यज्ञ

तो विचार विनिमय क्या? मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से सदैव उच्चारण करता रहता हूँ कि यज्ञ के सम्बन्ध में अपने विचार दीजिये। परन्तु हमारा तो केवल इतना ही विचार है इतनी ही अपने में सामर्थ्य है। तो आओ, आज देखो, प्रभु का ज्ञान गाते हुए, इस संसार सागर से पार हो जाएँ। यह जो संसार हमें निहित हो रहा है यह मान, अपमान वाला जगत् है। इससे मानव प्रायः उपराम हो जाता है। तो पूज्यपाद गुरुदेव! मैं आज कोई विशेष व्याख्या देने नहीं आया हूँ। विचार यह देने के लिये आया हूँ कि यह जो हमें ''सम्भूति सम्भवा देवो'' अपने में देवताओं की प्रतिभा का दिग्दर्शन करती रही है, देवताओं की महानता का प्रायः वर्णन आता रहा है, प्रायः मानव अपनी वृत्तियों को अपने में ले जाने के लिये सदैव अपने में भाषित नहीं रहना चाहते। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे वर्णन कराया, वर्णन कराते हुए कहा है ''सम्भवा देवो ब्रह्मा'' तुम सम्भवा हो, देवमय हो, देवस्य हो, देवस्व को धारण करने वाला अपनेपन में देखो, नहीं रह पाता। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे बहुत–सी वार्ताओं का परिचय दिया।

आज मैंने भी अपना बहुत–सा परिचय दिया है और वह परिचय यह है कि हमें प्रत्येक आभा में रमण करना है, प्रत्येक अपनी धारा को अपना करके जीवन में एक सङ्कल्प करना है, जिससे जीवन एक धारा में परिणत होता चला जाये। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मैंने कई काल में यह वर्णन करते हुए कहा था कि देखो, यह सम्भवा यह राखी बन्धन के स्वरूप में यज्ञोपवीत का सूत्र रह गया है। क्योंकि मुहम्मद के मानने वालों ने इस यज्ञोपवीत को ब्रह्मचारियों के कण्ठों में से, ब्राह्मणों के, क्षत्रियों के, वैश्यों के कण्ठ में से ले करके देखो, अग्नि में भस्म कर दिये जाते थे और 'जलं भविते देवाऽहम्' वह अपने में धारण करके मानव को निष्क्रिय बनाने का प्रयास किया।

तो परिणाम क्या है? निष्क्रिय बनाते हुए उन्होंने यज्ञोपवीत को पान कराया। यज्ञोपवीत उच्चारण करना भी एक अपराध के रूप में स्वीकार किया जाता था। परन्तु जब इसका वास्तविक स्वरूप हमारे समीप आने लगा तो इनकी विचित्रता का हमें भी दृष्टिपात होने लगा। तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे यह वर्णन कराया है। कि यहाँ जब यवनों के काल में यह संसार अपने ही मानवृहे भविष्यानवृहे' यह सब नष्ट–भ्रष्ट होने वाला है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मैं विशेष चर्चा देना नहीं चाहता। मैं केवल अपने उद्गान, कैसी दिशा में तुम्हें ले गया हूँ जिस दिशा के ऊपर मैं विशेष चर्चाएँ नहीं कर पा सकता। परन्तु देखो, चिन्तन और मनन करना यह हमारा कर्त्तव्य है। प्रत्येक मानव को चिन्तन में संलग्न रहना चाहिए, चिन्तित रहना चाहिए, चिन्तामग्न रहना चाहिए, आत्म उत्थान होना चाहिए।

हे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! कहीं यह श्रावणी कहलाती है, कहीं यह विधाता भगिनी का स्नेह कहा जाता है। यही वह सूत्र है जो देवताओं के ऋण से लेकर के पितृ ऋण और ऋषि ऋण का ऋणिक बन जाता है। आत्म लोक में प्रवेश करना, आत्मा के ऊपर चिन्तन करना यह आत्मलोक कहलाता है। परन्तु इसमें आत्मा की प्रतिभा सदैव गाती रहती है। तो विचार विनिमय क्या? मैं विशेष चर्चा प्रगट करने नहीं आया हूँ। विचार केवल यह देने के लिये आया हूँ कि आज का जो पर्व है वह क्या है? उस पर्व के ऊपर कितना कुठाराघात हुआ है। इसीलिये अब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से प्रार्थना और अपनी आभा में परिणत होना चाहूँगा।

यज्ञोपवीत की अनिवार्यता

(पूज्यपाद) मेरे प्यारे ऋषिवर! आज मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपने उद्गार, अपनी विचारधारा सहित दिये। परन्तु इन विचार धाराओं में कोई विशेष कोई वाक् ऐसा नहीं था। परन्तु केवल उन विचारों में एक ही विशेषता मानी गयी। इनका विशेष बृहे कि वह यज्ञोपवीत प्रत्येक मानव को धारण करना चाहिए। ऐसा इनका विचार रहा, देवऋण, ऋषि ऋण और पितृऋण यह जो तीनों ऋण है यह सदैव बने रहते हैं। इन ऋणों से मानव को उपराम होना चाहिए। देवऋण, ऋषिऋण, पितृऋण पिताओं की आज्ञा का पालन करना, उनकी सहानुभूति, उनका हृदय, अपने हृदय से आलिंगन करना है। इसका नामकरण महाकृतियों में रम गया है। परन्तु देखो, जब ऋषि ऋण की चर्चाएँ आयीं तो यहाँ ऋषि ने भी इसी प्रकार जब ऋषि ने इसी प्रकार विचारा, यज्ञोपवीत सृष्टि को आदि से....पुरुषों का प्रतीक माना गया है यह प्रतीक एक सहानुभूति है इसी प्रतीक को सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके वर्तमान के काल तक इसी प्रकार गति कर रहा है। गति करता रहेगा। परन्तु महानन्द जी ने अभी–अभी प्रगट कराया कि यवन काल में यह हुआ.....शेष अनुलब्ध

11.8.1984
लाक्षागृह, बरनावा

विष्णु की व्याख्या

जीते रहो,

देखो, मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेद–मन्त्रों का गुण–गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद–मन्त्रों का पठन–पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेद–वाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेद–वाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का गुण–गान गाया जाता है क्योंकि जितना भी यह जड़ जगत् अथवा चैतन्य जगत है, उस सर्वत्र ब्रह्माण्ड के मूल में वह मेरा देव दृष्टिपात आ रहता है। जिस भी स्थली पर मानव अपनी आभा को ले जाता है, उसी स्थली पर ब्रह्म की प्रतिभा ओत–प्रोत रहती है। तो इसीलिये हमें उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुण–गान गाना और सदैव अपने में रत रहना चाहिए। क्योंकि प्रत्येक मानव अपने में आनन्द की प्रतिभा में सदैव मनोनीत कामना रहती है कि मेरा अन्तरात्मा सुखद का अनुभव करने वाला हो।

मानवीय कामनाएँ

तो यह मानव अपने में सुखद और आनन्द कैसे प्राप्त कर सकता है। इसके ऊपर हमारे आचार्यों ने बहुत ऊँची–ऊँची उड़ानें उड़ी हैं अथवा इन वाक्यों पर बहुत चिन्तन और मनन किया है कि हमारा जीवन आनन्दवत, कैसे हो सकता है? वेद के आचार्यों ने अनुसंन्धानवेत्ताओं ने इस संसार के ऊपर ऊँची–ऊँची टिप्पणियाँ की हैं अथवा विचार विनिमय किया है और विचारने लगते हैं कि यह संसार क्या है?

संसार की वास्तविकता

जिस संसार में हम सुख की, आनन्द की कल्पना कर रहे हैं और वह कल्पना वास्तव में यथार्थ हैं या वह काल्पनिक मानी जाती है। परन्तु जब वह ज्ञान के, विवेक के क्षेत्र में जाता है तो जितना भी यह मानवीय प्रपंच है, यह एक कल्पना मात्र बन जाता है। यह एक काल्पनिक बन जाता है। परन्तु इसके प्रपंचों में जब रत रहने के लिये वह तपता रहता है। सृष्टि को निहारने लगता है और इसमें जो रहस्य उद्घृत होता रहता है उस को अपने में धारण करता रहता है और जिसे वह जानता है वह अपने में स्थिर हो जाता है कि वह आनन्द का स्रोत उस को वह सदैव त्यागने में तत्पर रहता है। वेद के आचार्यों ने कहा है कि संसार को निहारना चहिए। इस संसार के ऊपर विचार–विनिमय करना चहिए।

यज्ञोमयी विष्णु सूक्त

तो मुनिवरो! देखो, जैसे आज हमारे वेद के पठन–पाठन में विष्णु सूक्तों का पठन–पाठन हो रहा। विष्णु के भिन्न–भिन्न प्रकार के स्वरूप प्रायः हमारे वैदिक साहित्य में आते रहते हैं। क्योकि विष्णु के नाना स्वरूप जब आते है तो आचार्यों ने तो यह कहा है कि ''यज्ञोमयी विष्णु'' कि यह जो याग है, यह विष्णु हैं। परन्तु आचार्य यहीं शान्त नहीं हो जाते हैं। आचार्यो ने कहा कि जैसे यज्ञोमयी विष्णु है इसी प्रकार हमारे यहाँ विचार आता है कि जब यज्ञोमयी विष्णु है तो यज्ञ क्या है? जिस का अधिपति ही विष्णु है, यज्ञोमयी स्वरूप विष्णु है। तो वैदिक आचार्यो ने विचारा कि विष्णु क्या है? तो मुनिवरो! इस के ऊपर विचार–विनिमय होने लगा। यह वाक्य किसी काल में कागभुषुण्डी जी के द्वार पर आया और लोमश मुनि और कागभुषुण्डी जी के मध्य में यह वाक्य आया कि यज्ञोमयी विष्णु क्या है? तो कागभुषुण्डी जी ने तो विचारक बन करके इसका उत्तर दिया।

महर्षि कागभुषुण्डी द्वारा विष्णु की व्याख्या

जब लोमश मुनि ने यह कहा कि यज्ञोमयी विष्णुः यह विष्णु क्या है? यज्ञ क्या है? जो विष्णु यज्ञमयी स्वरूप माना गया है। तो कागभुषुण्डी जी ने कहा कि विष्णु कहते हैं पालन करने वाले को, और यह जो याग है यह पालन करने वाला है। याग का एक स्वरूप बनता है कि वह पालन करने वाला है। जब यह पालन करता है तो ''यज्ञोमयी विष्णु'' इसको हमारे यहाँ विष्णु कहा गया है। विष्णु के जितने भी पर्यायवाची शब्द आते हैं उन सर्वत्र शब्दों में पालना प्रमुख मानी जाती है। पालना में यज्ञोमयी विष्णु है। चाहे वह किसी भी रूप में हो। जैसे माता का नामोकरण विष्णु है, परमात्मा का नामोकरण विष्णु है, राजा का नामोकरण विष्णु है, सूर्य का नामोकरण विष्णु है। जैसे यह आत्मा है, इसका नामोकरण भी विष्णु कहा गया है।

पालक विष्णु

तो मुनिवरो! देखो, विष्णु के जितने भी पर्यायवाची शब्द आते हैं उन शब्दों में विष्णु आता है तो यह पालना करने में प्रमुख माने जाते हैं। जैसे माता है, वह प्रमुख बनकर के पालन कर रही है, लोरियों का पान कराती हुई बालक को एक महानता की शिक्षा देती रहती है, विचार बनते रहते हैं। वही जो लोरियों का स्रोत है वह अमृत बनकर के उसको अमृतमयी धारा प्रदान करता रहता है। इसी प्रकार जब हम मुनिवरो! यह विचारते हैं कि राजा का नाम विष्णु, तो वह राजा बनकर के पालना करना चाहता हैं। वह चरित्र की स्थापना करना चाहता है। कहीं वह अपनी संस्कृति को उद्धृत करना चाहता है। कहीं वह राजा से आततायियों को समाप्त करके महापुरूषों की रक्षा करना चाहता है। कहीं पालना करना चाहता है, कहीं वह पाण्डित्य बनकर के बुद्धिजीवी बनकर के, राजा के राष्ट्र को पवित्र बनाना चाहता है।

तो मुनिवरो! देखो, विचार सर्वत्र एक ही आता है कि वह पालना करना चाहता है। चरित्र के द्वारा मानव की प्रतिभा को और राष्ट्रीय समाज के तथ्यों को वह ऊँचा बनाना चाहता है। तो वेद का ऋषि कहता है, कागभुषुण्डी जी ने कहा है यज्ञोमयी विष्णुः। यही वाक्य जब महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के द्वारा भगवान् राम, जब विद्यालयों में अध्ययन करते रहते थे तो एक समय उन्होंने प्रातःकालीन एक वाक्य में कहा कि भगवान्! विष्णु क्या है?

महर्षि वशिष्ठ द्वारा विष्णु की व्याख्या

तो उन्होंने विष्णु सूक्तों का पठन–पाठन कराया। मुनिवरो! देखो, भगवान् राम ओर श्वेतभान ऋषि के श्वेतं प्रह्वेः दोनों अध्ययन करने लगें। प्रातःकाल में विष्णु सूक्तों का उन्होंने पठन–पाठन कराया तो भगवान् राम, विष्णु को सूर्य की उड़ान में ले गये। ऋषि का बालक भी सूर्य की उड़ान में ले गया कि यह जो विष्णु, यह तो सूर्य है, और यह नाना पृथ्वियों का पालन करने वाला है। विष्णु नाम यहाँ प्राण को भी कहते हैं जो सूत्र बन करके अपने में सूत्रित हो रहा है प्रत्येक परमाणु को अपने में धारण करके माला के सदृश्य अपने कण्ठ में वह कण्ठित कर रहा है। तो विचार क्या? संसार में यह जो प्राण है यह एक–एक आभा में पिरोया हुआ है। एक–एक सूत्र में सूत्रित हो रहा है। मेरे प्यारे! माता के गर्भ स्थल में एक मानव एक बिन्दु में एक शिशु रूप में पिरोया हुआ रहता है। वह माला के रूप में उन्हें पिरोता रहता है तो नाना परमाणु आते हैं अन्नाद के द्वारा, तेज के द्वारा, गति के द्वारा वह परमाणु शिशु अपने में पिरो लेता है। बाह्य जगत में आ जाता है तो युवा बन जाता है। युवावस्था में परमाणुओं को पिरोने का नाम ही युवा कहलाता है।

भगवान् राम द्वारा विष्णु की विवेचना

इसी प्रकार भगवान् राम जब वशिष्ठ मुनि के द्वारा इस प्रकार का अध्ययन कर रहे थे तो मुझे वह काल स्मरण आता रहता है। एक समय जब अध्ययन करते–करते विष्णु रूपों में वह अपने में अध्ययन नहीं कर सके, कहीं तो लोक लोकान्तरों की उड़ान उड़ने लगे, कहीं विष्णु स्वरूप परमपिता परमात्मा के चतुर्थ रूप में आ गये, परन्तु अपने में निर्णय नहीं कर सके। जब निर्णय नहीं हुआ तो रात्रि का काल आया, मध्य रात्रि में वशिष्ठ मुनि महाराज के आश्रम में दोनों ब्रह्मचारियों ने प्रवेश किया। महर्षि वशिष्ठ मुनि बोले कि हे ब्रह्मचारियों! तुम्हारा आगमन कैसे हुआ है? हम इस आगमन काल को नहीं जान सके। क्योंकि मध्य रात्रि में, मध्यकाल में मेरे आश्रम में तुम्हारा आगमन कैसे हुआ? राम और ऋषि पुत्र बोले हे प्रभु! हम इसलिये आये हैं कि आपने हमें प्रातःकाल विष्णु सूक्तों के मन्त्रों का अध्ययन कराया था परन्तु मन्त्रों का अध्ययन करते–करते हम अपने में निर्णय पर नहीं पहुँच सके हैं। कहीं तो आत्मा का नाम विष्णु आता है, कहीं सूर्य का नाम विष्णु आता है। परन्तु एक ही स्थिति है। **''प्राणां भविते देवाः''** यह प्राण में सर्वत्र पिरोया हुआ जगत दृष्टिपात आता है। हम लोक लोकान्तरों में जाते हैं, निहारिका में पहुँचे हमें वहाँ भी प्राण सूत्र ही दृष्टिपात हुआ। परन्तु जब माता के गर्भ स्थल में अपनी श्रुति को ले गये तो वहाँ भी पालन करने वाले सूत्रों में भी प्राण ही दृष्टिपात आता रहा। कहीं वह सूर्य के रूप में वह तेजोमयी है, अग्नि के रूप में उषामयी स्वरूपों को ले करके पालना का स्रोत बना हुआ है। जब उन्होंने यह व्याख्या की तो ऋषि से कहा प्रभु! हम सन्तुष्ट नहीं हुए हैं। हमें सन्तुष्ट कीजिए, जिससे हम विष्णु स्वरूप को जान सकें।

महर्षि वशिष्ठ द्वारा पुनः विष्णु की व्याख्या

उन्होंने कहा–बहुत प्रिय, तो वशिष्ठ मुनि महाराज ने कुछ चर्चाएँ की और कहा विष्णु जो शब्दार्थ है, विष्णु जो स्वरूप है वह आत्मतत्व को माना गया है। आत्मा को हमारे यहाँ विष्णु कहते हैं। राजा का नामोकरण विष्णु आया है क्योंकि राजा चार नियमों से संयोग का पालन करता है। चार नियमावलियों से इस की प्रतिभा को जानता है। यह वार्ता हो रही थी कि प्रातः काल हो गया। प्रातः काल कहीं से महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज, ब्रह्मचारी सुकेता, ब्रह्मचारी कवन्धी भ्रमण करते–करते वशिष्ठ मुनि महाराज के आश्रम में आ पहुँचे। विचार देना भी समाप्त हो गया था। प्रातःकाल अपनी क्रियाओं से निवृत्त होकर के

याग में परिणत होना था। प्रत्येक ब्रह्मचारी अपनी क्रियाओं से निवृत्त हो करके यज्ञशाला में विद्यमान हो गये। ब्रह्मचारियों के सहित उसी काल में महर्षि कागभुषुण्डी जी और महर्षि लोमश भ्रमण करते हुए इसी विचार से चले कि आज हम विष्णु की व्याख्या महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज से प्राप्त करेंगे।

तो मुनियो! देखो, उन के यहाँ प्रातःकालीन याग हो रहा था। माता अरुन्धती विद्यमान थी। महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज और ब्रह्मचारी एक पंक्ति में विद्यमान थे। पंक्तियों में विद्यमान हो करके वेदों का उद्घोष होने लगा। वेदों का उद्गान गाने लगे। जब वेदों का उद्गीत गाया जा रहा था तो जैसे याग समाप्त हुआ, वेदों का पठन–पाठन समाप्त हुआ तब मुनिवरो! भगवान राम और ऋषि कुमार दोनों उपस्थित हुए। उन्होंने कहा प्रभु! आप हमारी दृष्टि में ब्रह्मवेत्ता हो। उन्होंने कहा–बहुत प्रिय। महर्षि वशिष्ठ मुनि बोले कि हमारी शंकाओं का निवारण किया जाये और वेदों का जो उद्घोष आप उच्चारण करते हैं उसका हमें निर्णय दीजिये। कागभुषुण्डी जी बोले, राम! तुम क्या निर्णय चाहते हो? उन्होंने कहा–प्रभु! यहाँ वेद का मन्त्र आता है कि यज्ञोमयी विष्णु और कहीं यज्ञोमयी सूर्य है, कहीं सूर्य की आख्यायिका, कहीं **"प्राणं विष्णु व्रते देवाः"** कहीं यह प्राण विष्णु रूप में आता है। तो विष्णु के यह जो पर्यायवाची शब्द हैं इनके ऊपर हम प्रकाश चाहते हैं। अन्धकार से, प्रकाश में अपने हृदय को लाना चाहते हैं। हमें निर्णय दीजिये?

महर्षि भारद्वाज द्वारा विष्णु की विज्ञान सम्मत व्याख्या

तो मुनिवरो! देखो, कागभुषुण्डी जी ने महर्षि भारद्वाज से कहा–महर्षि भारद्वाज मुनि बोले भगवान्! मैं तो विज्ञान का विद्यार्थी हूँ। मैं तो विज्ञान में इस के ऊपर अध्ययन करता रहा हूँ। उन्होंने कहा–तो तुम निर्णय करो। तुम्हारी विज्ञान की धारा विष्णु के सम्बन्ध में क्या कहती है? उन्होंने कहा हमारे यहाँ विज्ञान की प्रतिभा में इस **"अग्नि ब्रह्म वाचाः"** जिस से सूर्य प्रकाशित होता है इसके आश्रित बन करके यह सूर्य विष्णु कहलाता है। यह विष्णु सूर्य बन कर के पृथ्वियों को अपने में धारण किये रहता है। इनको प्रकाश देता रहता है, पालना करता रहता है। जब विज्ञान में हम मन्त्रों को ले करके गमन करते रहे हैं तो प्रायः हमें ऐसा दृष्टिपात हुआ। परन्तु रहा यह कि हम विष्णु को क्या स्वीकार करें? केवल विज्ञान में तो विष्णु प्रकाश को कहते हैं, विष्णु धाराओं को कहते हैं। उन धाराओं के द्वारा हम अग्न्याधान करके यन्त्रों का निर्माण करते हैं। यह उच्चारण करके भारद्वाज मुनि मौन हो गये।

महर्षि लोमश द्वारा विष्णु की विशद् यौगिक व्याख्या

परन्तु महर्षि लोमश जी ने कहा–हमारे यहाँ तो आत्मा का नाम विष्णु माना गया है। मैं जब योग में प्रवेश करता हूँ तो दृष्टिपात आता है कि आत्मा के स्वरूप को जो जिस दशा में ले जाना चाहता है वही मार्ग उस के लिये सर्वोपरि बन जाता। जैसे आत्मा को हम ब्रह्म कहें तो वेद के मर्म को जानने वाला ब्रह्मवत् को प्राप्त होता है। यदि हम ज्ञान में रत रह करके ज्ञान के द्वारा विवेक में परिणत हो जाये। विवेकी बनकर के हम आन्तरिक जगत को बाह्य जगत से जब मिलान करना प्रारम्भ करते हैं या बाह्य जगत को आन्तरिक जगत में ले जाते हैं तो प्रकाश में एकोकी आत्मा दृष्टिपात आने लगती है।

महर्षि लोमश मुनि ने कहा–कि एक समय मैं मगध राष्ट्र में पहुँचा तो वहाँ कुछ ब्रह्मवेत्ता एकत्रित हुए। उन्होंने कहा–कि प्रभु। आप क्या ले रहे हो? तो उस समय मैं एक आसन ले रहा था। परन्तु जब उन्होंने आसन की चर्चाएँ की तो आसन के अनेक पर्यायवाची शब्द आये और यह मेरा जो आसन है सर्पकेतनी एक औषधि होती है मैं उस का आसन अपने द्वार पर प्रतीति करता रहता हूँ। जब मैं पूज्यवाद गुरुदेव के द्वारा अध्ययन करता रहता था तो सर्प केतनी औषधि का गुरु ने आसन दिया और उस आसन पर विद्यमान हो करके मैं अध्ययन करता रहता था। विचार क्या कि मैं एक समय सर्प केतनी औषधि का और इस के फलों और जड़वत् दोनों को तपा करके अग्न्याधान भी करता था, याग भी करता था और इसे पान करने से मैं सर्प की प्रतिभा, सर्प की भाषा, सर्प के क्रिया–कलाप को अपने मस्तिष्क में सदैव अध्ययन करता रहा हूँ। गुरु अनुभव से वह दृष्टिपात आ गया था। मैं उसे जान गया था, पूज्यपाद गुरुदेव ने यह वर्णन करा दिया था कि तुम सर्प केतनी औषधि का पान करो। सर्प केतनी औषधि का आसन बना करके इस पर विद्यमान होकर के तुम याग किया करो।

मुनिवरो! देखो, **"यागां भविते देवाः"** याग किसे कहते हैं? मैं उस समय इन्द्रियों के ऊपर चिन्तन कर रहा था। मैं इन्द्रियों के साकल्य को उस समय एकत्रित कर रहा था। मैं इन्द्रियों के साकल्प का, साकल्य क्या है? जो धर्म का छोर कहलाता है। प्रत्येक मानव यह कल्पना करता रहता है, धर्म को पुकारता रहता है, कि धर्म क्या है? सर्वोपरि धर्म केवल एक ही वचन होता है, एक ही प्रतिभा में प्रतिष्ठित रहता है। यह जो धर्म है यह मानव की इन्द्रियों में समाहित रहता है। मैं ज्ञानेन्द्रियों के साकल्य को, विषयों को रूप, रस इत्यादियों को एकत्रित कर रहा था। इन के ऊपर चिन्तन हो रहा था, चिन्तन करते–करते मुझे जब बहुत समय हो गया तो यह प्रतीत हो गया कि इन्द्रियों का जो विषय है, यह किस में पिरोया हुआ है?

तो मुनिवरो! देखो, विचार आया। उस समय लोमश जी कहते हैं कि मैंने वेद का अध्ययन किया, तो मुझे यह विचार आ गया कि मैं सर्प केतनी औषधि का आसन बनाये हुये विद्यमान हूँ और मैं इन्द्रियों के ऊपर अध्ययन कर रहा हूँ। इन्द्रियों को पिरोने का कौन–सा सूत्र है? मैं प्राण के क्षेत्र में चला गया। प्राण, अपान के क्षेत्र में प्रवेश करते ही प्राण में तो परमाणु पिरोया हुआ है और मुनिवरो! व्यान में चित्त पिरोया हुआ है और अपान में यह गुरुत्व सृष्टि का क्षेत्र पिरोया हुआ है। जो यह जो समाज है इस में जितना बाह्य जगत है वह पिरोकर के इन्द्रियों का एक विषय बना हुआ है। इसी प्रकार सारा जो ब्रह्माण्ड है वह रूप, रस, गन्ध इत्यादिओं में ओत–प्रोत रहने वाला है और यह पाँच मनके हैं जो प्राण सूत्र में पिरोये जाते हैं। वहीं प्राण मुनिवरो! उदान बन रहा है। वही प्राण विभक्त होकर के व्यान बन रहा है। वही प्राण समान बन रहा है, वही प्राण अपान बन रहा है। पाँचों प्रकार की प्रकृति की जो गतियाँ हैं वह इसी में ओत–प्रोत होकर के सर्वत्र भौतिक विज्ञान इस के आश्रित रहने वाला है।

याग से विष्णु मिलन

तो मुनिवरो! देखो, जब ऋषि ने रस प्रकार की व्याख्या प्रारम्भ की तो महर्षि लोमश मुनि महाराज अपना यह वक्तव्य देने लगे कि मैं तो केवल इन्द्रियों के साकल्य का याग कर रहा हूँ। यह मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे वर्णन कराया है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे यह आज्ञा दी कि तुम याग करो। मैं विचारता रहा कि कौन–सा याग करूँ? तो उन्होंने कह–कि विष्णुमयी याग करे। यह विष्णु नाम परमात्मा का है और हम परमात्मा से, विष्णु से उस काल में मिलान कर सकते हैं जब याग करेंगे। वह कौन–सा याग है? प्रत्येक इन्द्रियों के साकल्य को, प्रत्येक मनकों को एकत्रित करके प्राण रूपी सूत्र में पिरो करके उस को ज्ञान रूपी अग्नि में जब हवि प्रदान करते हैं तो विवेक की धाराओं की जागरूकता हो जाती है और विवेक उत्पन्न होते ही संसार खिलवाड़ बन जाता है और एकोकी विष्णु के गर्भ में प्रवेश कर जाते है।

जब महर्षि लोमश ने यह वर्णन कराया तो राम शान्त, मुद्रित हो गये। उन्होंने कहा–धन्य है प्रभु! आप ने हमें यौगिक क्षेत्र में पहुँचा दिया है, हमें योग के ब्रह्माण्ड में, आपने परिणत करा दिया है। हम केवल कल्पना मात्र, काल्पनिक वाक्यों में इस का संशोधन करते रहे हैं। महर्षि लोमश मुनि यह उच्चारण करके मौन हो गये। जब मौन हो गये तो कागभुषुण्डी जी ने महर्षि वशिष्ठ मुनि से कहा भगवन्! आप इस विष्णु के सम्बन्ध में कोई उपदेश दीजिये। वेद मन्त्रों में जैसे यज्ञोमयी विष्णु आता है यह यज्ञोमयी विष्णु कैसे माना गया है? महर्षि लोमश ने तो आत्मिक याग की कल्पना की है। यहाँ आत्मिक याग में आत्मा ही विष्णु बन गया है। यज्ञोमयी विष्णु याग का अधिपति कहलाता है। आप भी अपने विचार को व्यक्त कीजिये।

महर्षि वशिष्ठ द्वारा समन्वय

तो मेरे प्यारे! महर्षि वशिष्ठ मुनि बोले–मैं तो भौतिकवाद और आध्यात्मिकवाद दोनों का समन्वय करता रहता हूँ। दोनों को एक प्रतिवादिता में, एक स्वरूप में इस का वर्णन करता रहता हूँ। महर्षि वशिष्ठ मुनि बोले–कि मैं व्याकरण की दृष्टि से, इसकी प्रतिभा को प्रतिभाषित करता रहता हूँ कि यह जो

विष्णु है, यह नाम तो राजा का है। राजा का नाम विष्णु है। मुनिवरो! उन्होंने कहा—जो तुम्हारी व्याख्या हैं राजा नाम आत्मा को कहते हैं। जो शरीर का अधिपति बना हुआ है। जो चित्त की महत्ता में कहीं प्रवेश करता है। यही प्रकृति के आवेश का स्वामी है। आत्मा मन का स्वामी है क्योंकि इस आत्मा को रथी कहा है तो यह बुद्धि सारथी कहलाती है और यह जो बुद्धि है यह मन की एक धारा है। क्योंकि मन की चार प्रकार की धारा कहलाती हैं। एक का नाम मन है, द्वितीय का बुद्धि, तृतीय का चित्त और चतुर्थ अहंकार, यह चार प्रकार की धारा कहलाती है। यह चारों ही विषय प्रकृति के कहलाते हैं और प्रकृति का स्वामित्व करने वाला मन है। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार यह एक समूह बन करके अन्तःकरण बनता है तो इनके ऊपर जो अधिराज है वह राष्ट्रवत् कहलाता हुआ आत्मा कहलाता है। यह जो आत्मा है यह जब मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार को अपने वशीकरण कर लेता है, वशीकरण करता हुआ प्रभु में प्रतिपादित हो जाता है, मुनिवरो! देखो, प्रभु को अपने में स्वीकार कर लेता है। वह प्रभु कौन है? जो संसार का पालन करने वाला है, संसार की प्रतिभा में सदैव रत रहने वाला है वह विष्णु कहलाता है। इस प्रकार विष्णु को अधिराज कहकर वे मौन हो जाते हैं। परन्तु अधिराज की व्याख्या बाह्य जगत में भी है, माता अरून्धती ने कहा कि आन्तरिक जगत में भी है।

माता अरुन्धती की महानता

ऋषि ने बहुत ऊँची वार्ता प्रकट की तो माता अरुन्धती से कागभुषुण्डी जी ने कहा—हे मातेश्वरी! जब मैं माता की लोरियों का पान करता था, जब मैं, मेरे पूज्य पिता का नाम विश्वेश्कर ऋषि था, और विश्वेश्कर ऋषि अपने में महान तपस्वी थे। परन्तु मेरी माता का नाम सुदामिनी था। मेरी माता को प्रतिपादिता भी कहते थे। परन्तु मेरे माता—पिता का नामोकरण तो संस्कारों पर आधृत था। उनका नाम अम्बेश्वरी कहलाता था। जब मैं अम्बेश्वरी के द्वार पर जाता, लोरियों का पान करता रहता था तो माता अम्बेश्वरी यह कहा करती थी कि तुम्हारे (अरुन्धती के) जो पिता थे सोमभूक् ऋषि महाराज वह नित्य प्रति भ्रमण करने आते और वे (अम्बेश्वरी) ऋषि से उपदेश लेने जाती। और तुम्हारी माता का नाम सोमलता था। सोमलता जब लोरियों का पान कराती रहती थी बाल्यकाल में, तो माता यह कहा करती थी हे बालक! यह जो ऋषि कन्या है, यह बड़ी विदुषी हैं, यह महान है यह ब्रह्मवेत्ता बनेगी किसी काल में, तो आज हम तुम्हें ब्रह्मवेत्ता की दृष्टि से दृष्टिपात कर रहे हैं तो हमें कुछ उपदेश दीजिये। हम भी यह जानना चाहते हैं हे देवी! हे ब्रह्मवादिनी! हे विज्ञानवेत्ता हम यह जानना चाहते हैं तुम विष्णु की क्या व्याख्या कैसे करती हो? अपने मुखारविन्दु से उस समय माता अरुन्धती ने कहा—मेरे स्वामी ने जब इस की चर्चाएँ की हैं तो इस से आगे भिन्न क्या चर्चा कर सकती हूँ। कागभुषुण्डी जी बोले, नहीं, देवी! कुछ तो उच्चारण करो।

माता अरुन्धती द्वारा विष्णु की व्याख्या

तो माता अरुन्धति ने कहा **"सम्भवं देवा"** हमारे यहाँ विष्णु की नाना प्रकार की व्याख्याएँ आती रहती हैं। **"यागां भविते"** मैं तो प्रातः कालीन, ब्रह्मचारी जन जब याग करते हैं तो इस याग को मैं विष्णु कहती रहती हूँ और विष्णु क्यों कहती हूँ? हे ब्रह्मचारी! यह जो याग तुम कर रहे हो, वेदों का उद्घोष कर रहे हो, मन्त्रों का उद्गीत गा रहे हो, यह जो याग है, इस याग का नाम यज्ञोमयी विष्णु कहलाता है। तो मैं इस की व्याख्या इस प्रकार करती रहती हूँ कि जब इस में सुगन्ध होती है, जब इस में हम स्वाहा कहते हैं, अग्न्याधान करते हैं, तो यह अग्नि यज्ञशाला में प्रदीप्त हो जाती है। यह अग्नि काष्ठों में रहने वाली है और अग्नि का प्रवेश, सन्निधान मात्र से अपने स्वरूप में परिणत हो जाती है। समिधा को भी स्थूल से सूक्ष्म रूप बना दिया है। साकल्य का भी सूक्ष्म रूप बन गया और सूक्ष्म रूप बन करके कहाँ चला गया? यह द्यौ—लोक में चला गया। जब द्यौ—लोक में चला गया तो वह यजमान, याग करने वाले हम सब जन पवित्र हैं, आत्मवेत्ता हैं। तो वह याग **भुवः लोक** में चला गया और **स्वः** में जब प्रवेश कर गया तो **स्वः** का नाम द्यौ—लोक कहते हैं। वह याग द्यौ—लोक में चला गया और जितने हम विद्यमान रहने वाले हैं उन का चित्र द्यौ—लोक में चला गया और यज्ञशाला का रथ बन करके द्यौ—लोक में प्रवेश कर गया। अब द्यौ—लोक में वह भ्रमण करता है। अन्तरिक्ष में, अवकाश में वह स्थिर रह गया है। वह शब्द हमारा ज्यों का त्यों बना हुआ है। उस में जो सुगन्ध है, प्रतिभा है, परमाणुवाद है, वह परमाणुवाद भूः, भुवः, स्वः, लोकों में ओत—प्रोत हो गया है उन में प्रतिष्ठित हो गया है और जब वह उन में प्रतिष्ठित हो गया तो वही शुद्विकरण बन करके सूर्य की किरणों के द्वारा जो विष्णु कहलाता है उस की किरणों के द्वारा इस का समन्वय समुद्रों से होता है। समुद्रों से यह किरणें जल को अपने में धारण कर लेती हैं। उससे वत्रासुर का जन्म होता है, मेघों का जन्म होता है। उससे विद्युत में जो स्वः लोकों में रहने वाली है जिसको हम द्यौ कहते हैं उस का संघर्ष होता है और वायु और विद्युत दोनों का संघर्ष होकर के प्राण शक्ति अपने में प्राणस्तव को धारण करके उसी से मेघों की धीमी—धीमी वृष्टि हो जाती है, पृथ्वी के द्वारा नाना प्रकार के व्यंजनों का जन्म हो जाता है। नाना प्रकार के व्यंजनों का जन्म होकर के कोई वनस्पति के रूप में है कोई जङ्गम सृष्टि के रूप में कहलाता है कोई उद्भिज हो जाती है तो मुनिवरो! देखो, उस की पालना कहाँ से होती है एक—दूसरे का सहयोगी बन करके एक—दूसरे में पारस्परिक क्षमता द्वारा स्वतः उत्पन्न हो जाती है और जितना इनमें शुभ कर्म होता है उन कर्मो की प्रतिभा का नाम ही विष्णु कहलाता है इसीलिये सर्वोपरि याग, यज्ञोमयी विष्णु कहलाता है।

जब माता अरुन्धती ने इस प्रकार की व्याख्या की तो कागभुषुण्डी जी नत मस्तक हो गये। उन्होंने कहा—धन्य है मातेश्वरी! तो इस प्रकार विचार विनिमय ऋषि मुनियों के वक्तव्य द्वारा यज्ञोमयी विष्णु की विवेचना होती रही। कागभुषुण्डी जी ने माता अरुन्धती से कहा—हे मातेश्वरी! और भी किसी प्रकार की व्याख्या कर सकती हो? उन्होंने कहा इस की भिन्न—भिन्न प्रकार की व्याख्याएँ बन सकती हैं परन्तु उन रहस्यों को उद्धृत मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने किया है और महर्षि लोमश इत्यादियों ने किया है। यह रहस्य तो प्रतिभा के रूप में परिणत रहता है। इसका अभिप्रायः केवल एक ही है और एकोकी कौन कहलाता है? जो पालन करने वाला है उस का नाम विष्णु है और यज्ञोमयी विष्णु, जिन कामों में मानव सदैव परिणत हो करके अपनी आभा में परिणत हो जाता है।

बेटा! मैं विशेष विवेचना तुम्हें देने नहीं आया हूँ मैं कोई व्याख्याता नहीं हूँ। केवल तुम्हें संक्षिप्त परिचय देने के लिये आया हूँ और वह परिचय क्या है? जिस आभा में मानव अपने जीवन को ऊँचा बनाना चाहता है उसी आभा में अपमानित होकर के अपनी धारा में परिणत होकर के अपने जीवन को ऊँचा बनाना चाहता है।

यह है बेटा! आज का वाक्। आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्रायः यह कि महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के आश्रम में नाना प्रकार का विचार—विनिमय होता रहा। भगवान् राम ने इन सब को स्वीकार किया। राम और ऋषि कुमार सब प्रसन्न हो गये। उन्होंने कहा—धन्य है प्रभु! तो बेटा! मुझे समय मिलेगा मैं महर्षि वशिष्ठ के विद्यालय की शेष चर्चाएँ कल प्रकट करूँगा। इस के पश्चात् यह आज का वाक् अब समाप्त होने जा रहा है।

आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा क्या है कि मुनिवरो! आज हम विष्णु सूक्तों का पठन—पाठन कर रहे थे, उस में अपने को ले जा रहे थे। उस की आभा में परिणत होकर के आपने जीवन को महान बनाना चाहते हैं। यह है बेटा! आज का वाक् अब मुझे समय मिलेगा, मैं तुम्हें शेष चर्चाएँ कल प्रकट करूँगा, आज का वाक् समाप्त। अब वेदों का पठन—पाठन होगा।

17.8.1984

ब्रह्मयाग का स्वरूप

जीते रहो,

देखो, मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भाँति, कुछ मनोहर वेद–मन्त्रों का गुण–गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन–पाठन किया है। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेद–वाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का गुण गान गाया जाता है, क्योंकि जितना भी यह जड़ जगत् अथवा चैतन्य जगत् हमें दृष्टिपात आ रहा है इस सर्वत्र ब्रह्माण्ड के मूल में प्रायः वह मेरा देव दृष्टिपात् आ रहा है। जिस भी वाक्य को ले करके मानव उसके ऊपर विश्लेषण करना प्रारम्भ करता है, तो उसमें अनन्तता का दर्शन होता है। प्रत्येक मानव परम्परागतों से ही नाना प्रकार का विचार विनिमय करता रहा है अथवा अनुसन्धान करता रहा है। परन्तु अन्तिम जो चरण है, अन्तिम जो उसकी आख्यायिका है उसमें वह या तो मौन हो जाता है या उसी में रत हो जाता है।

धेनु का अभिप्राय

तो इसीलिये मेरे प्यारे प्रभु का यह अनन्तमयी जगत् है। जिसके ऊपर मानव परम्परागतों से अनुसन्धान करता रहा है। परन्तु आज का हमारा वेद–मन्त्र हमें कुछ कह रहा है, वेद मन्त्र कहीं हमें ऐसी उड़ान में ले जाना चाहता है, जहाँ मानव अगम्य और मौन हो जाता है। आज का हमारा वेद मन्त्र उस माँ धेनु के सम्बन्ध में कुछ विचार विनिमय देता चला जा रहा था, क्योंकि वह जो धेनु है उसके ऊपर हमारे वैदिक साहित्य में बहुत से पर्यायवाची शब्द आते रहते हैं। उन पर्यायवाची शब्दों में धेनु का केवल एक ही अभिप्राय है, जो दुही जाती हो, उसका नाम धेनु कहा जाता है। अब धेनु के वैदिक साहित्य में बहुत से पर्यायवाची शब्द हैं जैसे धेनु नाम पृथ्वी को कहा गया है जो हमारे आचार्यों के समीप दुही जाती है, क्योंकि गौ नाम के पशु को भी धेनु वर्णन किया गया है। परन्तु यहाँ धेनु का अभिप्राय यह है जो दुही जाती है। वैज्ञानिक जन दुहा करते हैं। दार्शनिक अपनी स्थली पर विद्यमान हो करके उसको दुहने का प्रयास करते हैं और ज्ञान और विज्ञान को क्रियात्मक रूप देना चाहते हैं। परम्परागतों से यह उड़ान प्रायः मानवीय मस्तिष्कों में रही है। ऋषि, मुनि धेनु के सम्बन्ध में भिन्न–भिन्न प्रकार का विचार विनिमय देते रहे। परन्तु जहाँ धेनु नाम हमारे यहाँ पृथ्वी को कहा गया है, धेनु के रूप में हम स्वतः ज्ञान के सागर में चले जाते हैं।

ऋषियों की संगोष्ठियाँ

परन्तु मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, जिस काल में विद्यालयों में विद्यमान हो करके ऋषि मुनि अपने में प्रायः अनुसन्धान अथवा अन्वेषण करते रहते थे। इस संसार के सम्बन्ध में नाना प्रकार की उड़ान उड़ने वाले ऋषि हुए हैं। परन्तु वे जो भिन्न–भिन्न प्रकार की उड़ाने हैं उन्हीं में तो धेनु, उसी के गर्भ में निहित रहती है। तो मेरे प्यारे! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब वशिष्ठ मुनि महाराज के यहाँ नाना ऋषि मुनि एकत्रित हो करके अपना विचार विनिमय करते रहते थे। ब्रह्मचारी जनों का यह स्वाभाविक गुण होता है कि वह आचार्य से प्रश्न करते हैं और आचार्य भली भाँति उसका उत्तर देते रहते है।

तो मुनिवरो! प्रातः कालीन महर्षि वशिष्ठ मुनि के आश्रम में याग होता रहता था, उसको हमोर यहाँ देव याग के रूपों में परिणत किया गया है, ब्रह्म याग भी होता रहता था। परन्तु बेटा! एक समय प्रातः कालीन नाना ब्रह्मचारी एक पंङ्क्ति में विद्यमान हैं, परन्तु महर्षि वशिष्ठ मुनि को कहा गया कि आप ब्रह्मयाग कीजिये। ब्रह्मचारियों के मध्य में ब्रह्म याग करना है, तो मुझे कुछ ऐसा स्मरण है कि महर्षि वशिष्ठ और माता अरुन्धती और महर्षि कागभुषुण्डी जी, महर्षि लोमश और मुनिवरो! देखो, महर्षि विश्वामित्र ब्रह्मचारियों के मध्य में विद्यमान है और वशिष्ठ मुनि महाराज से ब्रह्म याग के सम्बन्ध यह कहा गया कि आप ब्रह्मयाग कीजिये।

ब्रह्मयाग

महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ब्रह्मयाग में जब परिणत होने लगे तो ब्रह्मयाग किसे कहते हैं? नाना ऋषि मुनियों के मस्तिष्कों में यह आशङ्का बनी रहती है कि ब्रह्मयाग क्या है। तो महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज और माता अरुन्धती ने कहा–ब्रह्मयाग कहते हैं, ब्रह्म की महती का वर्णन करना, अथवा ब्रह्म का चिन्तन करना और ब्रह्म के चिन्तन करने का नाम ही बेटा! ब्रह्मयाग है। ब्रह्म को अपने में समावेश करना, अपने में यह सिद्ध करना कि मैं ब्रह्म में हूँ और ब्रह्म मेरे में निहित रहता है। इसको एक सूत्र में लाने का नाम ही ब्रह्म याग कहा जाता है। याग का अभिप्राय यह है यागाम् जहाँ प्रवृत्ति एकाग्र हो जाती हो। ब्रह्म यागी पुरुषों का जब यह विचार विनिमय होता रहा कि ब्रह्मयाग ब्रह्मकी महती का वर्णन है, ब्रह्म की सृष्टि का वर्णन है। ब्रह्म याग हम अपने में करने वाले बनें। तो ब्रह्मयाग के सम्बन्ध में ऋषि ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा–ब्रह्मयाग उसे कहते हैं जहाँ इन्द्रियों का साकल्य एकत्रित हो करके और उनका साकल्य बना करके, हम हृदय रूपी यज्ञशाला में जब अपना याग करते हैं साधना के द्वारा, तो उसे हम ब्रह्मयाग कहते हैं।

तो ब्रह्मयाग का अभिप्राय क्या है, ब्रह्मयाग उसे कहते हैं, जो अपनी इन्द्रियों के प्रत्येक विषयों का साकल्य बनाता है और साकल्य बना करके, ब्रह्म का दर्शन करता है। ब्रह्म की प्रतिभा में निहित हो जाता है, जैसे मानव अपने नेत्रों के ऊपर अन्वेषण करने लगता है और मानव अपने श्रोत्रों के ऊपर विचार विनिमय करने लगता है, परन्तु देखो, विचारता–विचारता बहुत दूरी चला जाता है। जो एकसूत्र में ला करके उसे एक दूसरे में निहित करने वाला हो, उसी को हमारे यहाँ ब्रह्मयाग कहा जाता है।

महर्षि अटूटी मुनि द्वारा ब्रह्मयाग पर विचार

महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने ब्रह्मवेत्ताओं के, ब्रह्मचारियों के मध्य में, विद्यमान हो करके कहा कि एक समय हमारा जब बाल्यकाल था, हम ब्रह्म की पिपासा में भ्रमण करने के लिये चले, हम ब्रह्म को जानने के लिये तत्पर हुए। तो भ्रमण करते–करते हम महर्षि अटूटी मुनि महाराज के द्वार पर पहुँचे। महात्मा अटूटी मुनि महाराज ने कहा–आओ, वशिष्ठ! महर्षि वशिष्ठ विराजमान हो गये, दोनों ऋषियों का यह विचार विनिमय हुआ भगवन्! मैं ब्रह्मयाग करना चाहता हूँ। ब्रह्मयाग को जानना चाहता हूँ ब्रह्मयाग क्या है?

तो मुनिवरो! देखो, महर्षि अटूटी ने कहा कि ब्रह्मयाग को तुम नहीं जानते? ब्रह्म का साक्षात् दर्शन करना, जैसे यज्ञशाला में विद्यमान हो करके देवपूजा करने वाला यजमान जब देवयाग करता है, तो याग करता हुआ, अग्नि को अपने साथ, अपना साक्षी बना लेता है। अग्नि को साक्षी बना करके नाना प्रकार का जो भौतिक द्रव्य है, उसे वह अग्नि में अग्न्याधान करके, उसके साथ अपने को चित्रावलियों में रूपान्तरित करना चाहता है। इसी प्रकार प्रत्येक मानव ब्रह्मयागी बनना चाहता है। तुम ब्रह्मयाग में रहना चाहते हो, तो बेटा! ब्रह्मयाग उसे कहते हैं जहाँ ब्रह्म का दर्शन हो जाये। ब्रह्म का दर्शन कैसे होगा? तो ऋषि ने यह प्रश्न किया कि ब्रह्म का प्रायः दर्शन कैसे होगा? तो उन्होंने कहा जितना भी ब्रह्माण्ड है जितना भी ये लोक लोकान्तर हैं यह सब एक सूत्र में पिरोया हुआ है। एक सूत्र में पिरोये हुए होने के सम्बन्ध ब्रहे तो ब्रह्म का उज्ज्वल दर्शन है, और भी इससे सूक्ष्म धारा में गति करने लगोगे तो तरङ्गों का विकिरण करने वाला वह ब्रह्म माना गया है। वहाँ भी ब्रह्म का दर्शन होता है। अन्तिम में जब ब्रह्मा को जानने वाला अपने को संसार में निष्क्रिय बना करके परमात्मा में रत हो जाता है, तो वास्तव में परमात्मा का विशेष दर्शन हो जाता है।

ऋषियों का गन्धर्व आश्रम में गमन

जब ऋषि ने यह वाक् प्रगट कराया, तो मुनिवरो! देखो, वशिष्ठ बोले कि मेरे हृदय में यह विचार ऋषि की स्थलियों में प्राप्त हो गये। मैं उन विचारों को चिन्तन में लाता रहा, परन्तु देखो, वहाँ से भी महर्षि अटूटी को अपने साथ भ्रमण करते हुए हमारे यहाँ गन्धर्व रहते थे। जब हम पांचाल राष्ट्र में पहुँचे तो

वहाँ एक गन्धर्व रहते थे। तो गन्धर्व के समीप जा करके दोनों ने कहा कि प्रभु! हम ब्रह्मयाग के सम्बन्ध में पिपासी बने हुए हैं कि ब्रह्मयाग क्या है? तो उस समय गन्धर्व ने कहा कि मैं भी ब्रह्मयाग में तत्पर होने के लिये जा रहा हूँ। परन्तु मेरा विचार यह है कि यहाँ से कुछ ही दूरी पर देखो, कोई ऋषि रहते हैं, उन ऋषि का नाम वैशम्पायन है और वैशम्पायन ऋषि महाराज ब्रह्म की पिपासा में लगे हुए हैं। 12 वर्ष हो गये एक विचार, वह जिसके ऊपर अध्ययन करते–करते वह ब्रह्मयागी बनना चाहते हैं।

ऋषियों की महर्षि वैशम्पायन से जिज्ञासा

जब यह उनका निर्णय है, तो ऋषिवरों ने वहाँ से भ्रमण करते हुए गन्धर्व भी उनके साथ में हैं। उनको ले करके वह ऋषि वैशम्पायन के द्वार पर पहुँचे। महर्षि वैशम्पायन मुनि महाराज ने उनका बड़ा सत्कार किया, उन्हें आसन दिया, आसनों पर जब वह विद्यमान हो गये, तो उन्होंने कहा–कहो भगवन्! यह मेरा कैसा अहोभाग्य है, कि ब्रह्मवेत्ता मेरे समीप विद्यमान हैं। उन्होंने कहा–प्रभु! हम तो ब्रह्म के पिपासी हैं, और ब्रह्मयाग में रत रहते हैं, परन्तु ब्रह्मयाग को हम जानना चाहते हैं कि यह ब्रह्मयाग क्या है?

महर्षि वैशम्पायन द्वारा ब्रह्मयाग की व्याख्या

तो मुनिवरो! देखो, जब ऋषि ने यह श्रवण कर दिया, तो वैशम्पायन बोले कि महाराज! मैं एक समय महाराजा अश्वपति के यहाँ वृष्टियाग के लिये पहुँचा। मैंने वहाँ एक वृष्टियाग कराया, जब वृष्टि हुई तो उसको कुछ ऋषियों ने देखो, ब्रह्मयाग का एक प्रभुत्व माना। उन्होंने माना कि यही तो ब्रह्मयाग है, जो **"ब्रह्मवाचं ब्रहे"**, यह वृष्टि, याग के द्वारा होती है। तो वह ब्रह्मयाग हो रहा है। तो जब ऋषि ने यह वर्णन कराया तो महाराजा वशिष्ठ ने कहा–मेरे अन्तरात्मा को विश्वास नहीं हुआ। भगवन् वैशम्पायन! मैं इसको ब्रह्मयाग स्वीकार नहीं करता। यह शिक्षाप्रद एक उपदेश है, मैं तो यह जानना चाहता हूँ ब्रह्म का विशेष दर्शन कैसे होता है। तो महर्षि वैशम्पायन बोले–कि आओ, विराजो।

महर्षि वैशम्पायन द्वारा प्राणसूत्र की विवेचना

तो मेरे प्यारे! देखो, वह सब एक पंक्ति में विद्यमान हो गये, एक पंक्ति में विद्यमान हो करके, महर्षि वैशम्पायन महाराज ने प्राण सूत्र की विवेचना की और प्राणसूत्र में उन्हें मौन करा दिया कि यह जो प्राण तथा अपान था तुम्हारे में मानो गति कर रहा है, इस गति को जानने के लिये तुम तत्पर हो जाओ। जो उन्होंने उच्चारण किया, उसी आभा में हम निहित हो गये और निहित हो करके प्राण को जानने के लिये तत्पर हो गये। कहीं प्राण को जानें तो उसका अपान में समावेश करें। तो उन्हें प्राण का दर्शन हो जायें। जहाँ प्राण की उड़ान में हम समावेश करें, तो उसी समय हमारे यहाँ एक रेचक वायु का दर्शन होने लगा। जब दर्शन होने लगा तो उस समय कहा कि प्रभु! यह प्राणों का एक दूसरा जो विभाजन हो गया, यह तो विभाजन की ऊर्ध्वा एक प्रतिक्रिया कहलाती है। परन्तु इसमें हमें आत्म विश्वास नहीं हुआ। तो उन्होंने कहा–कि प्राणसूत्र का विचार तुम्हें होना चाहिए। क्योंकि प्राणसूत्र में यह ब्रह्माण्ड सर्वत्र पिरोया हुआ है। एक समय जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा अध्ययन कर रहा था, अध्ययन करते–करते प्राणसूत्र में मैंने जब अपने को पिरोना प्रारम्भ किया, तो उसी प्राण सूत्र में सर्वत्र ब्रह्माण्ड मुझे पिरोया हुआ दृष्टिपात् आने लगा।

प्राणसूत्र की महत्ता

जब मैं अन्तरिक्ष में परमाणु विद्या के ऊपर अध्ययन करने लगा, समाधि में चला गया तो नाना प्रकार के जो मण्डल हैं वह मुझे एक सूत्र में पिरोये हुए दृष्टिपात आने लगे। जब मैंने अपने में अध्ययन किया तो उसमें भी मुझे प्राण ही दृष्टिपात आने लगा। क्योंकि **"मनस्तत्त्वं प्राणायां ब्रह्मवाचो देवाः"** जो मन–प्राण की प्रतिक्रिया को जान करके अग्रणीय बनता रहता है, वही तो ब्रह्म सूत्र में पिरोया हुआ स्वीकार करता है और वही ब्रह्मयाग कहलाता है।

ब्रह्मयाग कहते ही उसे हैं जब प्राण को अपान में और अपान को व्यान में, व्यान को उदान में और उदान को समान में पिरोया हुआ स्वीकार करके, हम अपने में अपने को उसे पिरोया स्वीकार कर देते हैं, तो प्रायः हम रत हो जाते हैं। जैसे यजमान, यज्ञशाला में विद्यमान हो करके अग्नि में अपने को पिरो लेता है, अग्नि प्रकाश है, अग्नि जीवन है, यही अग्नि ब्रह्म की आभा में रत रहने वाली है। यही ब्रह्म बन करके, मानव के जीवन का एक सार्थक तत्व बन करके उसमें मानव अपने को रत कर लेता है, तो इसी प्रकार जब ऋषि ने यह वर्णन कराया, तो हमने वैशम्पायन ऋषि से कहा–कि महाराज! जब हम उस ब्रह्म सूत्र में अपने को पिरो लेते हैं तो यह वाणी का विषय क्या बनता है उस काल में? तो ऋषि ने कहा कि वाणी अपने में मौन हो जाती है, वाणी का अपना कोई विषय नहीं रहता है। उस समय तो केवल मानव अपने अन्तर्हृदय में, उस परमात्मा का दर्शन करता हुआ, अपने में रत रह करके, उस आभा में अपने को पिरो लेता है।

तो मुनिवरो! देखो, वैशम्पायन के यह वाक् हमारे विचार में आये। तो मुनिवरो! देखो, महर्षि वशिष्ठ ने ब्रह्मचारियों के मध्य में कहा–कि मैंने जब वैशम्पायन ऋषि से यह चर्चाएँ श्रवण की तो मैं इसमें रत हो गया। इसको हम ब्रह्मयाग कहते हैं। परन्तु देखो, एक समय हम उसी काल में वैशम्पायन को ले करके और भ्रमण करते हुए ब्रह्मचारी कवन्धी के जो पिता रेणकेतु महाराज थे, वह अपने में देवयाग कर रहे थे, हम देवयागी के समीप पहुँचे।

महर्षि रेणकेतु द्वारा देवयाग का विशद् वर्णन

मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने कहा–कि प्रभु! आप जो यह देवयाग कर रहे हैं इसका क्या अभिप्राय है? तो वैशम्पायन ऋषि महाराज ने यह प्रश्न किया, तो वैशम्पायन के प्रश्न करने पर देखो ऋषि ने कहा, कवन्धी के पिता ने कहा–कि महाराज! मैं देवयाग कर रहा हूँ। मेरे अन्तर्हृदय में जो देवता विद्यमान हैं, उन देवताओं के मैं दर्शन करना चाहता हूँ। वह जो देवता मेरे शरीर में विद्यमान हैं कहीं अश्वनी कुमार हैं, कहीं पार्थिव देवतम् जड़ देवता मेरे शरीर में वास कर रहे हैं वे मेरी प्रायः रक्षा में रहे हैं और रक्षा करते रहे हैं, मैं उस देवयाग को कर रहा हूँ। जिसे हम हूत और देवपूजा कहते हैं, देवयाग कहते हैं। इसीलिये देवयागी बनकर मैं देवलोक में जाना चाहता हूँ। देवलोक की प्रतिभा में अपने को रत करना चाहता हूँ। तो मुनिवरो! देखो, सबने विद्यमान हो करके देवयाग किया और देवयाग में से जो तरङ्गों का प्रादुर्भाव हो रहा था वह द्यौलोक में जाता हुआ, उन्हें दृष्टिपात आने लगा। सूक्ष्म दिव्य दृष्टि वाले पुरुष ही इस याग की प्रतिभा को जानने वाले होते हैं। परन्तु देखो, वहाँ से भी गमन करते हुए उद्यालक गोत्र के ऋषियों के द्वार पर पहुँचे। शिकामकेतु ऋषि महाराज अपने में याग कर रहे थे, अपने में यागी बने हुए थे।

द्यौ–लोक की पवित्रता

जब उनके समीप पहुँचे तो कहा–कि प्रभु! आप कौन–सा याग कर रहे हैं? उन्होंने कहा हम परोक्ष याग कर रहे हैं। परोक्ष याग उसे कहते हैं जो वाणी का स्वरूप हमारा अन्तरिक्ष में रत हो गया है उस वाणी के स्वरूप को हम इस याग के द्वारा शोधन करना चाहते हैं। जैसे यज्ञशाला में यजमान के लिये कहा गया है हे होताजनो! तुम यजमान की वाणी को पवित्र बना दो। यजमान वाणी से पवित्र बन करके द्यौ–लोक में चला जाये। तो इसलिये वाणी पवित्र होती है। वाणी जितनी पवित्र होती है, उतना ही मानव का द्यौ–लोक पवित्र बन जाता है। मानव के जितने चक्षु दिव्य दृष्टि वाले होते हैं उतना वह गन्धर्व लोकों में रमण करने वाला हो करके गन्धर्वों से अपनी वार्ता प्रगट करता है। जितने श्रोत्र पवित्र बन जाते हैं। शुद्ध वाणी से, शुद्ध ध्वनि से उतना ही शब्द विज्ञान ऊँचा बन करके, देखो, मानव अपने श्रोत्रों को ऊँचा बना करके देवताओं के समीप जाने के लिये तत्पर हो जाता है।

मुनिवरो! देखो, ऋषियों ने कहा–प्रभु! जितना हमारा त्वचा पवित्र हो जाता है। उतना ही हम प्रभु को प्राप्त हो जाते हैं। हमारे यहाँ प्रत्येक आभा में, प्रत्येक मानव, प्रत्येक इन्द्रियों का अपने में अनुष्ठान करता रहे, अपने में विचार विनिमय करता हुआ इस संसार सागर से पार हो जाय मुनिवरो! देखो, मैं विशेष विवेचना देने नहीं आया हूँ। वशिष्ठ मुनि महाराज ने कहा जब हम बाल्यकाल में वैशम्पायन और उद्यालक गोत्र के ऋषियों के समीप पहुँचे, तो वह अपने में याग कर रहे थे। अपने में अनुसन्धान भी कर रहे थे। उस समय वह परोक्षयाग कर रहे थे।

परोक्ष याग द्वारा पूर्वजों का दिग्दर्शन

मुनिवरो! देखो, परोक्षयाग का अभिप्राय यह है कि जो अपने पूर्वज हैं, उन पूर्वजों का दर्शन कर रहे थे। यन्त्रों के द्वारा, याग के द्वारा देखो, अपने पूर्वजों के चित्र आना, यह हमारे यहाँ विज्ञान की प्रतिभा मानी जाती है। यह भौतिक विज्ञान यह प्रकृति का जो स्वरूप है, यह मानव के समीप आता रहता है, मानव की प्रतिभा में एक महानता की ज्योति का दर्शन होता है। जब महानता की ज्योति का दर्शन होता है, तो वही अपने पूर्वजों का दर्शन होता है। तो उस समय मुनिवरो! देखो, शिकामकेतु उनकी पत्नी रेणु–आवृति अपने में याग करते प्रातःकाल ब्रह्मयागों में परिणत हो करके, देवयाग में देवताओं की पूजा करना, अपने पूर्वजों का दिग्दर्शन करना, पूर्वजों की प्रतिभा में परिणत रहना। एक समय **"अप्रतं ब्रह्मं"** एक ऐसा शब्द भी है जो यजमान का आकार बन करके, यज्ञशाला का आकार बनकर के अन्तरिक्ष में ओत–प्रोत हो जाता है और वह अन्तरिक्ष में शब्द विद्यमान हैं, उनमें याग होता हुआ देवताओं की प्रतिभा प्रायः दिग्दर्शन हो रही थी। वह दर्शनों की प्रतिभा में मानव रत हो रहा था। उस आभा में रत हो करके अपने को ऊँचा बना रहे थे। अपने पूर्वजों की वाणी में जो उनके चित्र, उनके क्रिया कलाप उनकी यज्ञशाला में, यन्त्रों में ऋषि को दृष्टिपात आते रहते थे।

मुनिवरो! देखो, जब ऋषि उनका दर्शन करते तो बड़े प्रसन्न होते। उनके यहाँ पिता, महापिता, पडपिता जो उनके शब्द विद्यमान थे, उनका क्रियाकलाप, उनका चित्र, चित्रों में चित्रित होता हुआ, एक अन्तरिक्ष में एक ओजस्विता उन्हें दृष्टिपात आई।

तो मुनिवरो! देखो, महर्षि वशिष्ठ मुनि बोले जब इस प्रकार के क्रिया–कलापों को ऋषियों के समीप मैंने दृष्टिपात किया, तो मेरा अन्तर्हृदय पवित्रता में और आनन्द में आनन्दित और विभोर हो गया। तो उस समय सर्वत्र यागों का दर्शन करने के पश्चात् वह ब्रह्मयागी बने हुए, ब्रह्म का भी दर्शन करते रहते थे। तो इसलिये मैं अपने बाल्यकाल, युवाकाल की वह चर्चा कर रहा हूँ जब मैंने भ्रमण किया था तो उस समय ऋषि–मुनियों का स्मरण, ऋषि मुनियों की वार्ताएँ मुझे स्मरण आती रहती हैं।

मानशुचि याग की महत्ता

तो हे ब्रह्मचारियो! आज तुम मेरे यहाँ विद्यालय में जो यह याग होने जा रहा है, यह याग, हमारे यहाँ इसे मानशुचि याग कहा जाता है। जो मन को एकाग्र और मन की प्रतिभा को लेकर के मन का शोधन करने के लिये, हम यह याग कर रहे हैं तो उसको मानशुचि याग कहते हैं। तो इसीलिये हम इस याग में विद्यमान हैं। हे ब्रह्मचारियो! तुम्हें ब्रह्मचरिष्यामि बनकर के ब्रह्म का दिग्दर्शन करना है। ब्रह्म का दर्शन कौन करता है? एक मानव ब्रह्मचरिष्यामि बनकर के ब्रह्मचर्य के व्रतों का पालन करता हुआ प्रवृत्तियों को अपने में समेटता हुआ, वह रत होकर के ब्रह्म का दर्शन करता है और चरी का दर्शन करता है। चरी नाम प्रकृति का है। जितना भी दृष्टिपात आने वाला यह जगत् है। इस सर्वत्र जगत में यह चरी के रूप में परिणत रहता है। जितने भी लोक–लोकान्तर हैं, अथवा ब्रह्माण्ड हैं नाना प्रकार की आकाशगंगाएँ हैं, नाना निहारिकाएँ हैं और उन निहारिकाओं से नाना प्रकार की तरङ्गों का प्रादुर्भाव होता रहता है। उन तरङ्गों को जो अपने में समेटने वाला है, अपने में धारण करने वाला है, उन पर अपना विश्लेषण करता है। वही तो एक ब्रह्मचारियों में परिणत होने वाला ब्रह्म याग कहलाता है।

तो मेरे प्यारे! मैं विशेष विवेचना न देता हुआ, मैं कोई व्याख्याता नहीं हूँ, मैं तो केवल ऋषियों के विचार देने आया हूँ। तो मुनिवरो! देखो, मुनि वशिष्ठ ने कहा कि हे ब्रह्मचारियो! तुम अपने में एकत्रित हो करके, अपने में अनुष्ठान करते हुए, अपने में मानवीयता का दिग्दर्शन करते हुए चरी का, ब्रह्म का दोनों का दर्शन करो और दोनों का समन्वय करके एक सूत्र में सूत्रित हो करके तुम उसी में रत हो जाओ। तो यह ब्रह्मचारियों को प्रातःकालीन अपना उपदेश, याग के समय, याग का अभिप्राय यह यागां भविते हे मानव! तू अपनी आत्मा को और अपने शुभ संस्कारों को जागरूक करता हुआ, तू आत्मा को जानने वाला बन। आत्मवेत्ता बन करके तेरी प्रतिभा महानता में गति करे।

माता अरुन्धती का सारगर्भित विवेचना

मुनिवरो! देखो, यह उपदेश दे करके वशिष्ठ मुनि महाराज अपने मैं मौन हो गये परन्तु माता अरुन्धती ने इतने में अपना देखो, विचार देना प्रारम्भ किया। माता अरुन्धती यह उच्चारण करने लगी, कि जब मैं अपनी माता की लोरियों का पान करती रहती, माता के चरणों में विद्यमान होती तो वह माता मुझे इस प्रकार का उपदेश दिया करती थी और माता कहा करती थी, हे बालिके! तुम्हें ब्रह्मज्ञान के समीप जाना है, अरुन्धती मण्डल के द्वार पर जाना है और अरुन्धती मण्डल से जो ऊर्ध्वा में गति करने वाला अन्तरिक्ष है, उसमें भी तुझे रत रहना है। माता से जब मैं यह कहा करती कि हे माता! तू इस प्रकार का मुझे उपदेश देगी, मैं कैसे जा सकती हूँ? उन्होंने कहा **'विज्ञानां भविते देवाः'** प्रवृत्तियों के द्वारा, अपने याग के द्वारा अपना जब हम ब्रह्मयाग की उड़ान उड़ने लगेंगे तो यह तेरे लिये सम्भव हो जायेगा।

तो मुनिवरो! देखो, माता अरून्धती ने कहा–कि उस समय माता का यह उपदेश मेरे अन्तःकरण में अर्ति होता रहा। जब अर्ति होता रहा। तो जब मैं बाल्यकाल में देखो, अध्ययन करने के लिये तत्पर हुई, हे ब्रह्मचारियो! जब आचार्यों के समीप जा करके मैंने अध्ययन करना प्रारम्भ किया, तो मुझे एक–एक वेद के मन्त्र को ऋषिवर मुझे स्मरण कराते रहते थे। एक वेद मन्त्र का स्मरण कराते हुए, उन्होंने धेनु का वर्णन कराया। धेनु क्या है? उन्होंने मुझे धेनु के सम्बन्ध में वर्णन कराया। उन्होंने कहा–धेनु एक याग है क्योंकि याग को दुहने वाला, जो दुहा जाता है उसी का नाम धेनु कहा जाता है। तो धेनु का अभिप्राय क्या है? **'यागां भविते धेनुः'**। याग का नाम धेनु कहा गया है। इसीलिये धेनु को अपने में धारण करना है। माता–पिता के उन विचारों को ले करके, जब मैं आचार्यों के समीप धेनु को जानने लगी तो मेरे विचारों का उत्थान होने लगा। जब विचारों का उत्थान होने लगा, अध्ययन की प्रतिक्रियाओं में, मैं समाधि में भी प्रवेश होती रही, तो मेरे जो पूज्यपाद गुरुदेव सत्वेतत्त्व ऋषि महाराज थे, वह मुझे समाधि में ले जाते। परन्तु मैं लघु मस्तिष्क, रेणु मस्तिष्क और गन्धर्व लोकों का भ्रमण करती रहती। जब इन प्रवृत्तियों को मैं अपने में भ्रमण कराती रहती तो मैं लोक लोकान्तरों में देखो, उनकी तरङ्गें मेरे मस्तिष्क में आने लगीं। मैं लघु मस्तिष्क में आकाशगंगा का दर्शन करने लगी। कहीं ब्रह्माण्ड की प्रतिभा का दर्शन करती हुई देखो, अपने में मैं रत हो गयी।

तो मुनिवरो! देखो, माता अरुन्धती ने कहा–कि मैं अनुसधान करते–करते ब्रह्मवेत्ता बनने के लिये तत्पर होने लगी। ब्रह्मवेत्ता क्या है? प्रभु की यह जो सृष्टि है, इसी के चिन्तन में लगे रहना और यह ब्रह्म कैसे इसमें पिरोया हुआ है, यह ब्रह्म में कैसे पिरोयी हुई है, इस चिन्तन में लगे रहने का नाम ब्रह्मयाग का एक प्रतीक कहा जाता है। तो हे ब्रह्मचारियो! जहाँ हम अध्ययन कराते हैं, याग कराते हैं परन्तु इसके पश्चात् तुम्हारी प्रवृत्ति उसमें मानो रत रहे, यही हमारा विद्यालय सार्थकता के शिखर पर चला जायेगा। जब हम अपने में, एक दूसरे में पिरोया हुआ स्वीकार करते रहते हैं, तो यही तो ब्रह्म का प्रायः दर्शन कहा जाता है।

धेनु के विभिन्न रूप

तो मेरे पुत्रो! आज का विचार मैं क्या दे रहा हूँ? हमारे ऋषियों ने कहा धेनु नाम विद्या को कहा जाता है। इस विद्या का अध्ययन करना चाहिए। प्रत्येक विद्या को जानना, यह हमारे यहाँ धेनु की पूजा कही जाती है, धेनु की प्रतिभा कही जाती है। आज मैं कोई विशेष विचार तुम्हें देने नहीं आया हूँ। विचार यह देने के लिये आया हूँ कि मानव को याग में परिणत रहना चाहिए। याग हमारे यहाँ ब्रह्म का चिन्तन है, देवताओं के समीप जाना है, यह प्रायः देव पूजा और देखो, ब्रह्म याग की मैंने कोई सूक्ष्म–सी एक वार्ता तुम्हें प्रगट की। अपने–अपने अनुभव, ऋषि मुनि प्रायः समय–समय पर अपने विचार देते रहते हैं। उनका विचार अमृतमयी चिन्तन करने का उनका जो स्वभाव बन गया था, दिग्दर्शन करने की प्रवृत्ति बनी, तो मुनिवरो! देखो, उसी में रत रहना और धेनु को हमें जानना, धेनु हमारे यहाँ जो दुही जाती है उसी का नाम धेनु है। पृथ्वी का नामोकरण भी धेनु है, धेनु नाम विद्या का है, जितनी विद्या को तुम दुहने लगोगे तो उतनी विद्या में सूक्ष्म–सूक्ष्म तरङ्गें तुम्हारे समीप आनी प्रारम्भ हो जायेंगी।

बेटा! यह है आज का वाक् अब मुझे समय मिलेगा तो मैं तुम्हें शेष चर्चाएँ कल प्रगट करूँगा।

आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि हम धेनु को जानें और हम अभिमानी न बनें। एक वाक् हमारे विचार में नहीं आ रहा है तो द्वितीय से हम अपने विचारों की पुष्टि करें। परन्तु देखो, उससे न हो सके, उसको हीनता में नहीं दृष्टिपात करें। अन्तिम तुम लक्ष्य पर चले जाओगे, बेटा! देखो, अनुसंधान करना, चित्रों के दर्शन करना एक आभा में रत रहना अपनी जो पंच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, उन ज्ञानेन्द्रियों के विषयों को जान करके ब्रह्म में रत होना है। यह है बेटा! आज का वाक्। कल मुझे समय मिलेगा तो मैं तुम्हें शेष चर्चाएँ कल प्रगट करूँगा। आज का वाक् अब समाप्त होने जा रहा हैं। आज के वाक् में मैंने बिखरे हुए पुष्पों को एकत्रित करके, तुम्हारे समीप लाने का प्रयास किया। यह है आज का वाक्, कल समय मिलेगा तो मैं शेष चर्चाएँ कल प्रगट करूँगा। आज का वाक् समाप्त, अब वेदों का पठन–पाठन।

29.9.1984

संसार रूपी याग

जीते रहो,

देखो, मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भाँति, कुछ मनोहर वेद–मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेदमन्त्रों का पठन–पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेद–वाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेद–वाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का गुण गान गाया जाता है, क्योंकि प्रत्येक वेद मन्त्र उस परमपिता परमात्मा की गाथा गा रहा है। बेटा! जिस प्रकार माता का पुत्र माता की गाथा गा रहा है, जिस प्रकार यह पृथ्वी ब्रह्माण्ड की गाथा गा रही है, इसी प्रकार प्रत्येक वेद मन्त्र उस ब्रह्म की गाथा गा रहा है अथवा उसके गुणों का वर्णन कर रहा है उसकी महानता का उद्गीत गा रहा है। जिस भी वेद मन्त्र के ऊपर तुम विचार विनिमय प्रारम्भ करोगे उसी में तुम्हें सर्वत्र ब्रह्माण्ड की प्रतिभा का दर्शन होने लगेगा। आज हम उस परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन करें जो प्रत्येक वेद मन्त्र की प्रतिभा में निहित रहता है, क्योंकि यह जो पृथ्वी है यह प्रायः ब्रह्माण्ड की गाथा का एक प्रतीक कहलाया गया है।

माता वसुन्धरा

मुनिवरो! देखो, हमारे यहाँ वैदिक साहित्य में पृथ्वी को वसुन्धरा के रूप में परिणत किया है और यह ममत्व को धारण करने वाली है, यह माता वसुन्धरा कहलाती है। हे माँ! तू कैसी अनुपम है, तेरे गर्भस्थल में यह संसार निहित हो रहा है, नाना प्रकार का धातु पिपात बन रहा है, खनिज की प्रतिभा और खाद्य में अपनी वृत्ति पूर्ण है, जिसको मानव पान करता हुआ अपने को महान बनाता रहता है। तो मेरे प्यारे! आज का हमारा वेद मन्त्र माता वसुन्धरा की जहाँ विवेचना कर रहा है, वहाँ विष्णु की भी याचना कर रहा है।

यज्ञो वै विष्णु

हे विष्णु! तू पालन करने वाला है, यज्ञोमयी विष्णु है। विष्णु यज्ञ कहलाता है। परन्तु मैं यागों के सम्बन्ध में कोई विशेष विवेचना देने नहीं आया हूँ। कई कालों से ये चर्चाएँ प्रायः होती रही हैं कि यह जो याग है वह मानव का जीवन है। जितनी भी मानव की आन्तरिक प्रेरणा है, आन्तरिक धारा है उन सर्वत्र धाराओं का नामोकरण ही एक याग माना गया है, जिसमें देवत्व रहता है। कहीं–कहीं तो शासन में भी देव प्रवृत्ति उद्भूत हो जाती है और कहीं असुर प्रवृत्ति में भी देवत्व का भान होने लगता है। परन्तु यह वेद का वाक् बड़ी विचित्र, अपनी ध्वनि में ध्वनित हो रहा है।

त्रि–गुण व्याख्या

तो मुनिवरो! देखो, जब हम इन वाक्यों को विचारने लगते हैं कि वास्तव में रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण एक ही सूत्र के तीनों मनके हैं। एक दूसरे के पूरक कहलाते हैं, एक दूसरे में ओत–प्रोत हो रहे हैं। एक दूसरे के गर्भ की विवेचना कर रहे हैं। तो ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे पृथ्वी के गर्भ स्थल में नाना प्रकार के परमाणुओं का आदान–प्रदान हो रहा हो, वह जो परमाणुओं का आदान–प्रदान हो रहा है, वही तो विज्ञान के रूपों में परिणत हो जाता है, उन्हीं धाराओं को जानने वाला एक विज्ञान के क्षेत्र में रमण करने लगता है। तो बेटा! आज का हमारा वाक्, क्या कह रहा है? मैं तुम्हें उसी सभा में ले जाना चाहता हूँ जिस सभा में मुनि एकत्रित हो करके कुछ दर्शनों के वाक्यों के ऊपर चिन्तन करते रहे हैं। हमारे यहाँ प्रत्येक धारा का औरों की धारा से उसका समन्वय किया है। बाह्य जगत को आत्मा से सम्बन्धित है और अन्तर्जगत् मुनिवरो! देखो, संसार से ओत–प्रोत है।

विज्ञान में मानव की प्रतिभा

मुनिवरो! देखो, जिस प्रकार हम यह विचारने लगते हैं कि हमारे से कोई वस्तु दूरी नहीं है, तो उस वस्तु में अन्धकार नहीं आता। अन्धकार उस काल में आता है जबकि अपने और संसार के क्रिया कलाप को अपने से दूरी स्वीकार कर लेते हैं अपने से दूरी ही दूरङ्गम् अपने से दुरिता में दृष्टिपात कर लेते हैं, तो जब हम यह विचारते हैं कि लघु मस्तिष्क में नाना प्रकार के तारामण्डलों की छाया आती है, सौरमण्डल और निहारिकाओं की छाया आती है, तो यह ब्रह्माण्ड अपने से दूरी नहीं होता। जब हम यह विचारते हैं कि ऋतम्भरा के आने पर जब उसकी प्रतिभा आती है, तो लघु मस्तिष्क उसमें ओत–प्रोत हो करके और यह ब्रह्माण्ड जितना भी दृष्टिपात आता है, सौरमण्डल आते हैं उसमें वह पिरोये जाते हैं जो एक माला बन गयी है। तो उस माला से भी हम दूरी नहीं हैं, माला अपने में है और माला मुनिवरो! देखो, हमारा आयतन माना गया है। तो यह कैसा विचित्र मेरे प्यारे प्रभु का जगत् है? जब हम इसके ऊपर अन्वेषण करना प्रारम्भ करते हैं, विज्ञान के क्षेत्रों में प्रवेश करते हैं, तो विज्ञान हम से दूरी नहीं है। विज्ञान मानव की प्रतिभा ही तो कहलाती है। इससे सूक्ष्म और जो प्रत्यक्ष और परोक्ष में हो रहा है, उसको साक्षात्कार में लाने का नाम विज्ञान कहलाता है।

शब्द–विज्ञान

मुनिवरो! देखो, आज हम इससे पूर्व कालों में जब यह चर्चा कर रहे थे कि मानव के शब्द, मानव के आन्तरिक भाव यन्त्रों में दृष्टिपात आते रहे हैं, तो यह विज्ञान मानव का एक मौलिक अध्यावृत्ति कहलाता है। जब विज्ञान के क्षेत्र में रमण करने लगता है, तो प्रत्येक वस्तु में उसे विज्ञान ही विज्ञान दृष्टिपात आता है। जैसे विवेकी पुरुष को, आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता को एक आत्मा ही आत्मा दृष्टिपात आती है। इसी प्रकार जब हम वेद के प्रत्येक अक्षर अथवा मन्त्र पर विचारने लगते हैं तो यह संसार, ब्रह्माण्ड और प्रभु मेरे प्यारे! मातेश्वरी के स्वरूप में दृष्टिपात आने लगते हैं तो मुनिवरो! देखो, आज मैं दूरी न चला जाऊँ, विचार केवल यह चल रहा था, मैं तुम्हें महात्मा अर्धभाग के उस आश्रम में ले जाना चाहता हूँ जहाँ महात्मा अर्धभाग के यहाँ नाना ऋषिवर विद्यमान हो करके कुछ चिन्तन कर रहे थे। मृत्युंजयी बनने की कल्पना हमारे यहाँ परम्परागतों से ही मानव के हृदयों में, मानव के मस्तिष्कों में निहित रही है।

मृत्युंजयी

बेटा! देखो, महात्मा अर्धभाग के आश्रम में नाना ऋषिवर विद्यमान हैं, कुछ चर्चाएँ हो रही थीं कि मानव कैसे मृत्युंजयी बन सकता है? राजा अपनी प्रजा को कैसे मृत्युंजयी बना सकता है? इस प्रकार का विचार विनिमय हो रहा था। इस विचारधारा में हमारे यहाँ कुछ ऋषियों की विवेचना महात्मा भुंजु की विवेचना चल रही थी। महात्मा भुंजु यह उच्चारण कर रहे थे आयुर्वेद के ऊपर, कि आयुर्वेद में जाने वाला आयु के ऊपर विचार विनिमय करता रहता है, आयु को विचारता रहता है। मेरी आयु क्या है? मैं जिसे आयु कह रहा हूँ वह क्या है? तो आयु को विचारते–विचारते ऋषि, महात्मा भुंजु ने यह कहा, ऋषिवर ने यह कहा कि इसके ऊपर जब अन्वेषण किया गया, तो सत्यता के वेग के गर्भ में यह जो आयु है यह लुप्त हो जाती है। विवेक के क्षेत्र में आयु लुप्त हो जाती है, जब वह आयु लुप्त हो जाती है, तो मानव इसका विचार विनिमय करना ही त्याग देता है। इसको विचारना ही शान्त कर देता है। तो विचारता रहता है कि आयु क्या है? तो महात्मा भुंजु ने यह कहा कि आयु कुछ नहीं होती, परन्तु यदि कोई मानव मृत्युंजयी बनना चाहता है, प्रभु की प्रतिभा में रत रहना चाहता है, क्योंकि प्रभु के आँगन जब हम चले जाते हैं, तो आयु उसमें लुप्त हो जाती है। जब अपने संस्कारों को जीवात्मा ले करके शरीरों को त्यागता है, तो आयु संस्कारों में लुप्त हो जाती है।

तो मुनिवरो! देखो, विचार आया कि मृत्यु तो यह अज्ञानता की प्रतिभा का शब्द बन गया है, **'मृत्युंजयं वृहे वृताम्'** महात्मा भुंजु यह वाक् उच्चारण करने लगे तो ऋषि, मुनियों में एक नवीन–नवीन विचारों का प्रादुर्भाव होने लगा। महात्मा अर्धभाग ने ये कहा कि हे प्रभु! हे महात्मन् भुंजु! तुम जो यह मृत्यु के सम्बन्ध में, दर्शनों की बहुत ऊँची उड़ान उड़ रहे हो, हम यह जानना चाहते हैं कि मृत्यु जो शब्द है यह जो मृत्युंजय बनने की वार्ता प्रत्येक मानवीय मस्तिष्क में आते ही इसका लुप्त कहाँ हो जाता है। उस समय मुनिवरो! देखो, ऋषि ने, महात्मा भुंजु ने अर्धभाग के प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा कि–'यह कई रूपों में, कई स्थलियों पर लुप्त हो जाती है। जब ज्ञान हो जाता है, तो अज्ञान उसमें लुप्त हो जाता है, जब विवेक हो जाता है, तो ज्ञान, विवेक में लुप्त हो जाता है और जब विवेक हो जाता है तो केवल आत्मा रह जाता है, तो वह चेतना–चेतना में लुप्त हो जाता है। तो यह लुप्तमयी दूसरे में प्रति अवरोहो आभा में निहित हो जाती है। जब ऋषि महात्मा भुंजु ने यह वाक् कहा तो, मुनिवरो! देखो, **'ऋषि अप्रतं ब्रह्मवाचा'** ब्रह्मचारी मौन हो गया।

संसार की विवेचना

तो मुनिवरो! देखो, उन्होंने कहा–भगवन्! यह संसार क्या है? तो महात्मा भुंजु ने यह कहा कि यह जो संसार है, यह संसार एक आभा में दृश्य आने वाला यह जगत् कहलाता है, जो अपने–अपने दृष्टिकोण से मानो माँपता रहता है। परन्तु यह मापा नहीं गया, अब तक इस संसार को नाना रूपों में देखो, किसी ने मृत्युलोक, किसी ऋषि ने इसको कल्पवृक्ष की भाँति माना है, किसी ने इसको विज्ञानशाला के रूप में परिणत किया है। किसी ने विज्ञानशाला कहा है, किसी ने विचारशाला कहा है। किसी ने यह कहा कि इन्हें तो योग प्रतीति कहलाती है। भिन्न–भिन्न आचार्यों ने भिन्न–भिन्न रूपों में संसार को अपने–अपने दृष्टिकोण से मापा है। किसी ने इसे देने, लेने की व्यापारशाला कहा है, किसी ने चरित्रशाला के रूप में इस संसार को दृष्टिपात किया है। तो अपने–अपने दृष्टिकोण से दार्शनिक मापते रहते हैं, परन्तु मापा नहीं जाता। वेद का ऋषि कहता है कि इसको मापना चाहिए। मैं निष्क्रिय नहीं बनाना चाहता हूँ, परन्तु देखो, जब महात्मा भुंजु यह कह करके शान्त हो गये। उन्होंने एक ही वाक्य कहा है कि संसार को मापते–मापते तुम अपने में समाहित कर लोगे तो यह मापा जायेगा। अन्यथा बाह्य जगत में इसको कोई भी नहीं माप सका। तो जब ऋषि ने इस प्रकार ये उड़ानें उड़ीं, तो मुनिवरो! देखो, महात्मा भुंजु अपने आसन पर मौन हो गये।

संसार की माप

मुनिवरो! देखो, महात्मा अर्धभाग ने कहा कि–महाराज! इस संसार को कैसे मापा जाये? इसके सम्बन्ध में कोई उत्तर प्राप्त होना चाहिए। तो उसमें महर्षि पिप्पलाद मुनि उपस्थित हो गये और महर्षि पिप्पलाद ने यह कहा कि भाई! इसको मापने वाले ऋषि, मुनि हुआ करते हैं और ऋषि, मुनि इसको मापते रहते हैं और माप कर भी वहीं स्थिर हो जाते हैं। जैसे हमारे यहाँ उन्होंने अपने एक महापिता का वर्णन किया, उन्होंने कहा मेरे जो पिता थे उनका नाम ऋषि वर्तकेतु था और ऋषि वर्तकेतु के पिता का नाम साम्भुक् ऋषि था।

देवपूजा का अभिप्राय

तो साम्भुक् ऋषि महाराज एक समय माता–पिता के मध्य में क्रीड़ा कर रहे थे। उनका बाल्यकाल बड़ा विचित्र था। तो माता जब लोरियों का पान कराती, तो वह भी ऊर्ध्वा में उसे शिक्षा देती रहती। पिता के द्वार पर जाता तो पिता नित्यप्रति जो साधना में होते थे, भयङ्कर वनों में, देवताओं के सम्बन्ध में विचारते रहते। प्रातः कालीन ब्रह्मयाग करते रहते थे। ब्रह्मयाग के पश्चात्, वह नाना प्रकार का साकल्य एकत्रित करके प्रातःकालीन वह देवयाग भी करते रहते थे। जब वह देवयाग करते, तो ब्रह्मचारी अपने पिता के क्रिया कलाप को निहारता रहता। माता के भी क्रियाकलाप को निहारते रहते थे। उसके पश्चात् जब देवयाग करते थे, तो देवयाग, देवपूजा का अभिप्राय है कि देवताओं से प्रार्थना करते रहते और यह कहते हैं कि देवताओ! आओ, तुम्हीं तो मानव के रूप में तुम अति मानस के रूप में परिणत हो रहे हो। हे देवताओं! आओ, तुम अग्नि को अपना मुख बना करके हमारे जीवन का कल्याण करते हो। मुनिवरो! देखो, जब ऋषिवर ऐसी प्रार्थना करते रहते और कहते हे देवताओं! तुम्हारी तो यह संसार में रचना हो रही है। हे देवताओ! यह जो रचना मुझे दृष्टिपात आ रही है।

संसार रुपी याग

मुनिवरो! देखो, विचारता, विचारता, दूरी चला जाता हूँ विचारता रहता हूँ कि यह संसार, यह पृथ्वी क्या है? पृथ्वी के कणों को विचारने लगता हूँ तो उसमें गुरुत्व दृष्टिपात आता है। जब मैं और गम्भीरता में विचारने लगता हूँ तो उसी गुरुत्व का जब विभाजन करने लगते हैं, तो उसमें ब्रह्माण्ड दृष्टिपात आने लगता है। हे देवताओ! उसमें आपो दृष्टिपात आने लगता है, आपो में प्राणत्व रहने वाला है, वह जो आपो है वही जब, मैं माता के गर्भ में प्रवेश करता हूँ, तो वही आपो मेरा आसन बना हुआ है। वह आसन मेरा ओढ़न बना हुआ है, पासे बने हुए हैं परन्तु देखो, मेरे जीवन की प्रतिभा का जन्म हो रहा है। यह प्रभु का जगत् है। देवताओ! तुम प्रभु की ही तो समिधा हो। तुम प्रभु की समिधा बन करके इस संसार रूपी याग का निर्माण कर रहे हो। इस संसार रूपी याग का संचालन कर रहे हो। यही तो मेघों के रूप में परिणत हो करके आपो वृष्टि कर देता है, नाना प्रकार के खाद्यपदार्थों का जन्म हो जाता है। वही

खाद्य उसकी प्रतिभा, जब अग्नि के, ब्रह्मा–अग्नि के द्वार पर जाते हुए, अग्नि पृथ्वी के गर्भ में अग्नि उन परमाणुओं के रूप में रहती है, जो नाना प्रकार के खनिज और खाद्यों का निर्माण कर देती है। देवताओ की उपासना करने वाला, देवपूजा करने वाला, देव की याचना कर रहा है और यह कह रहा है हे देवताओं! आओ, तुम मेरे समीप, मेरे स्वरूप में परिणत हो जाओ। तुम मेरे में समाहित हो जाओ। क्योंकि मैं भी देवत्व को प्राप्त हो जाऊं तो मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने जब यह ब्रह्मो–वृताम् महात्मा ने कहा कि–वह जो महापिता हैं वे अपने पिता के क्रिया–कलाप को दृष्टिपात करते रहते थे।

सुसंस्कारवान बाल्य ही पूर्ण साधक

जब वह बाल्य, मेरे महापिता, प्रबल हुए, युवा होने लगे, तो माता–पिता के चरणों की वन्दना करते रहते। ऋत् और सत् की कल्पना करते, रहते और इस संसार के सम्बन्ध में विचारते रहते थे। वह साधना में परिणत हो गये। पिता की साधना को दृष्टिपात करते हुए जब युवा हो गये तो उन्होंने कहा–हे पितर्! मुझे आज्ञा दीजिए, मैं ब्रह्म का दिग्दर्शन करने जा रहा हूँ। मेरी प्रबल इच्छा है कि मैं ब्रह्म का दर्शन करना चाहता हूँ। मेरे प्यारे! देखो, पिता बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा, माता ने भी यही कहा कि हमारा तो जीवन सफल हो गया है। जिस माता के गर्भ से; पिता के, पितर के गृह में ऐसे पुत्रों का जन्म हो जाये जो ब्रह्म की जिज्ञासावाला हो, ब्रह्म के लिये वह तत्पर हो जाये। अपने सुख से प्रीति करने के लिये, इससे ऊँचा और मानव का सौभाग्य हो नहीं सकता। जब महात्मा ने कहा मेरे पुत्रो! पिप्पलाद मुनि बोले हमारे महापिता वहाँ से गमन करते हुए उन्होंने एक आचार्य, गुरु के समीप जाने का प्रयास किया कि जो मुझे मार्ग का पथदर्शन करा सके। जो सत्, चित् आनन्द में मुझे परिणत कर सके। उन्होंने कहा–कि वह वायु गोत्र में जन्म लेने वाले ऋषि के द्वार पर पहुँचे। जब स्वान्तु ऋषि के द्वार पर पहुँचे तो स्वान्तु ऋषि ने कहा–आओ, ब्रह्मचर्यन्! आओ, विराजो! तो वह विराजमान हो गये।

चित्तदर्शन की महिमा व पंचीकरण

परन्तु वह मार्ग का दर्शन करने के लिये तो उन्होंने कहा–कि तुम चित्त का दर्शन करो। यह जो तुम्हारे चित्त में नाना प्रकार के संस्कारों का जन्म होता है, संस्कारों की उद्बुद्धता होती है। इन संस्कारों को तुम अपने में नष्ट करने का प्रयास करो। तो पिप्पलाद जी कहते हैं कि मेरे महापिता ने तपस्या करनी प्रारम्भ की तो पंचीकरण में निहित हो गये। वह पंचीकरण क्या है? पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, इन पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के वह साकल्यों को एकत्रित करने लगे। पाँचों इन्द्रियों का साकल्य क्या है? मुनिवरो! वेद का ऋषि कहता है, मुनिवरो! देखो, वाणी का साकल्य एकत्रित करने के लिये वह शब्द में पहुँच गये और देखो, प्रीति का साकल्य एकत्रित किया, तो पिता के द्वार पर पहुँच गये। यदि वह घ्राण के द्वारं व्रहे मन्द, सुगन्ध को लेना तो घ्राण के द्वार पर, रूप, चक्षु से, शब्द श्रोत्रों से ले करके यह पंचीकरण कहलाता है। इनको ले करके इनका शोधन करते–करते इतनी दिव्य दृष्टि बनने लगी कि एक निहारिका के लोक लोकान्तरों की गणना करने लगे। अहो! निहारिका में चले गये। एक निहारिका में 72 लाख आकाश गंगाएँ, जिस निहारिका में समाहित हो जायें, ऐसी–ऐसी निहारिका दिव्य दृष्टि से पंचीकरण से उन्हें, प्राप्त होने लगी। तो बेटा! मैं बहुत गम्भीर क्षेत्र में ले गया तुम्हें, क्योंकि वेद की प्रतिभा, ऋषि मुनियों की उड़ान बड़ी विचित्र होती है। वह कैसे साधना के क्षेत्र में पहुँचे? अपने जीवन का पंचीकरण करके उसका साकल्य बना करके, जो हृदय रूपी यज्ञशाला में ज्ञानरूपी अग्नि का प्रादुर्भाव हो रहा है अथवा जो वह प्रदीप्त होने वाली अग्नि है उस अग्नि में इन विषयों का साकल्य बना करके उसको स्वाहा के रूप में परिणत करने लगे।

पंचीकरण द्वारा एकोकीकरण

जब वह हृदय रूपी यज्ञशाला में आता, जहां आत्म यज्ञ हो रहा था, सर्वस्व यज्ञ हो रहा था, देखो, चित्त में जो नाना प्रकार के संस्कार थे, वह उस यज्ञशाला में साकल्य बन करके भस्म होने लगे। अपने चित्त की प्रवृत्ति को, चित्र के मण्डल में ले गये, बाह्य चित्त और आन्तरिक चित्त दोनों का समन्वय करते हुए, दोनों का मिलान करते हुए चित्त की प्रतिभा समाप्त होने लगी। केवल एकोकीकरण बनने लगा। एकोकीकरण बन करके वेद का ऋषि कहता है कि मेरे महापिता ने 185 वर्षों तक इन्द्रियों के ऊपर अनुसन्धान किया, साकल्य बना करके हूत किया।

एकोकीकरण से प्रभु की पिपासा

प्राणों में रत हो करके, अपने को प्राण को सूत्र स्वीकार करके मुनिवरो! देखो, उसमें सूत्रित हो गये और सूत्रित हो करके उसमें रत हो करके वह चित्त के मण्डल की प्रतिभा को समाप्त करके **'चित्रां वृं रथं ब्रह्मवां कायस्व धी शुद्धो'** वायु का सेवन करने लगे। वायु में जो पोषक तत्व थे उसमें शीतली प्राणायाम, खेचरी मुद्रा, सोम प्रतिभा प्राणायाम माधुर्य प्राणायाम्, इनको करते हुए पोषकतत्व वायु से आहार करना और ब्रह्मयाग करना, देवपूजा करना, अपने को पंचीकरण बना करके, उन्होंने चित्त के मण्डल को जान करके और पृथ्वी के गुरुत्व और आपो की शीतलता, अग्नि की ऊष्णशक्ति और वायु में प्राण की प्रतिभा चतुष् को ले करके, वह द्यौ–लोक में प्रवेश कर गये और द्यौ–लोक में जो शब्दों का ताँता बना हुआ है। शब्दों के साथ में जो आकार रमण कर रहे हैं, चित्र भी रमण कर रहे हैं। तो मेरे महापिता ने अपने **"योगां बृहि वृत्ति आपः"** प्रवृत्तियों से अपने पिता, महापिता, पड्पिता अपने सौ–सौ महापिताओं के चित्रों के आकार वह अन्तरिक्ष में, द्यौ–लोक में दृष्टिपात करने लगे।

साधना की आवश्यकता

तो मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें विशेष विवेचना में ले जाना नहीं चाहता हूँ। प्रत्येक मानव को साधना की आवश्यकता है प्रत्येक मानव को साधक बनने की आवश्यकता है। क्योंकि साधक वही बनता है जिसे प्रभु की पिपासा जागरूक हो जाती है। **"यागां भविते देवाः"** जो ब्रह्मयाग और देवयाग दोनों को एक ही सूत्र के मनके के रूप में स्वीकार कर लेता है, एक ही माला के दोनों मनके हैं और दोनों को एक दूसरे में पिरोना है क्योकि देवता बाह्य जगत् और ब्रह्मयाग देखो, अन्तर्जगत् दोनों का भान करा देता है। मैं विशेष विवेचना तुम्हें देने नहीं आया हूँ। जब महात्मा पिप्पलाद मुनि महाराज ने साहित्यिक चर्चाओं को प्रगट किया, तो ऋषि मुनि बोले–कि वाक् तो तुम्हारा यथार्थ है परन्तु वह जो पंचीकरण बन गया था, उस पंचीकरण का अन्तिम चरण क्या होता है?

आत्म तत्त्व में पंचीकरण

तो महात्मा पिप्पलाद ने कहा कि पंचीकरण का एकोकीकरण बन करके, याग के रूप में परिणत हो गया। जैसे हम आध्यात्मिक याग करते हैं। उसका जब–जब बाह्यरूप बना तब–तब वह बाह्य विज्ञान में रत रहा। बाह्य यह संसार, इसको भौतिक विज्ञान के रूप में परिणत करते हैं और जब आत्मतत्व में पंचीकरण हो गया, एकोकीकरण बन करके छवि मानो अन्तःकरण की बन गयी और विवेक रूपी तरङ्गें जब परमात्मा, सच्चिदानन्द के लिये वह तरङ्गें तरङ्गित होने लगी तो उन तरङ्गों में, अपनी उड़ान उड़ने लगे। तो यह संसार साक्षात् दृष्टिपात आने लगा। मुझे स्मरण आता रहता है, मैंने बहुत पुरातनकाल में निर्णय कराया था कि मानव के चार प्रकार के मस्तिष्कों की सन्तुलना तुम्हें वर्णन की। आज मुझे इतना समय आज्ञा नहीं दे रहा है, इतना सूक्ष्मतम रहस्यों में भी मैं तुम्हें नहीं ले जाना चाहता हूँ। विचार केवल इतना ही है कि वह जो मानव नाना प्रकार का यह जो ब्रह्माण्ड है, नाना प्रकार की निहारिका, आकाशगंगाएँ इनमें वह योगेश्वर रमण करता है। रमण करके इसका जान करके बेटा! इसको एकोकीकरण करता हुआ, वह माता वसुन्धरा की गोद में चला जाता है। माता वसुन्धरा जो अपने में धारण कर रही है। वसुन्धरा के नाना प्रकार के पर्यायवाची शब्दों की विवेचना मैंने तुम्हें कई काल में प्रगट की है। जननी माता का नाम वसुन्धरा है, वसुन्धरा नाम पृथ्वी का है और वसुन्धरा नाम उस चेतना का है जिसके लिये मानव सदैव परम्परागतों से

अनुसन्धान अथवा अन्वेषण करता रहा है। महात्मा ने यह कहा, ऋषि ने यह कहा, अपने वृत्तों में महात्मा ने, पिप्पलाद ने कहा—कि मेरे महापिता एकोकी पंचीकरण करते हुए प्रभु को प्राप्त हो गये।

आध्यात्मिक याग से दीर्घ आयु

मुनिवरो! देखो, उन्होंने कहा—तुम्हारे पितर की कितनी आयु, कितना जीवन, कितना समय शरीर का था? उन्होंने कहा—मेरे महापिता ग्यारह सौ वर्ष और 35 दिन शरीर में आत्मा रहने के पश्चात्, वह शरीर को त्याग करके चले गये। तो मुनिवरो! देखो, आयु का भी विचित्र, बड़ा रहस्यतम् माना गया है। जब ब्रह्मचरिष्यामि को धारण करता है, जब ब्रह्मचरिष्यामि को जानने लगता है, ब्रह्म नाम परमात्मा का, चरी नाम प्रकृति का है जब दोनों के स्वरूप को जान करके, दोनों का एकोकीकरण करके अपने में देवत्व को धारण कर लेता है, तो उस मानव की आयु का प्रश्न नहीं बनता, क्योंकि आयु तो उसके योग में लुप्त हो जाती है। उसके विवेक में लुप्त हो गयी है।

मुनिवरो! देखो, जब पिप्पलाद मुनि ने यह निर्णय लिया तो पिप्पलाद मुनि इतना उच्चारण करके शान्त हो गये। मानव यदि मृत्युंजयी बनना चाहता है, तो बिना साधना के, बिना मन, बुद्धि के व अहङ्कार उपाधि को नष्ट किये बिना मानव मृत्युंजयी नहीं बन सकता। तो मुनिवरो! देखो, ऋषि यह कह करके, मौन हो गये। परन्तु देखो, आगे चलकर अमृतं ब्रह्मवाचो ब्रह्मचारी कवन्धी उपस्थित हुए और महात्मा कवन्धी ने, ब्रह्मचारी कवन्धी ने जो ब्रह्मचर्यव्रतों का पालन कर रहे थे। महात्मा कवन्धी को मेरे पुत्रो! देखो, 125 वर्ष हो गये थे ब्रह्म की जिज्ञासा करते, जिज्ञासा में रत हुए और ब्रह्मचरिष्यामि का पालन कर रहे थे। वह कहीं परमाणु विद्या में रत हो जाते, कहीं परमाणु विद्या को त्याग करके, विवेक में रत हो जाते, कहीं ऋषि—मुनियों की सभा में अपना वक्तव्य देना प्रारम्भ कर देते।

वंशजों के त्रुटिपूर्ण कार्यों का प्रभाव

तो महात्मा कवन्धी ने यह कहा कि जो अभी—अभी पिप्पलाद मुनि ने अपने पूर्वजों की चर्चा की है। मैं भी अपने पूर्वजों की चर्चा करूँ, तो यह प्रियतम तो नहीं होगा। परन्तु मेरे पूर्वजों ने भी मुझे यही शिक्षा दी है, मेरे पूर्वज मेरे महापिता का नाम सोमकेतु था, मेरे महापिता सोमकेतु एक समय तपस्या करने लगे; तपस्या करते—करते उनका तप देखो, मध्य में उनके तप में घृणित—सा वातावरण बन गया। घृणित वातावरण कैसे बना? एक समय मेरे जो बाबा महापिता थे सोमकेतु, उनके वंशलज एक श्रेती नामक ऋषि वह याग कर रहे थे। परन्तु वह याग क्रिया से विहीन हो रहा था, परन्तु देखो, उन्होंने जो निष्क्रिय याग हो रहा था, उसमें तमोगुण छाया हुआ, जो याग हो रहा था, उसकी तरङ्गों ने मेरे महापिता देखो, सोमकेतु मुनि महाराज के मन को भ्रमित कर दिया। वह तपस्या समुद्र के तट पर कर रहे थे और उनके जो वंशलज थे वह याग गंगा के तट पर कर रहे थे हिमालय की कन्दराओं में। परन्तु देखो, वह तरङ्गें जा करके वही ऋषि के अन्तःकरण को भ्रमित कर दिया। इतना सूक्ष्म अनुपम जगत् है; मैं इस जगत् की कहाँ तक चर्चा करूँगा।

मन की तरङ्गों की शक्ति अतुलनीय

यह तो प्रभु का तरंगोवाद का जगत् है परन्तु देखो, उन तरंगों ने जब अन्तःकरण को भ्रमित कर दिया तो सोमकेतु ने प्रभु से कहा भगवन्! यह क्यों अन्तःकरण मेरा भ्रमित हो गया है, मैं आध्यात्मिकवाद का पथिक था और मैं भौतिक विज्ञान में चला गया। तो मुनिवरो! देखो, भौतिक विज्ञान में रत हो गये। तो महात्मा, ऋषि भारद्वाज मुनि के आश्रम में आये और महात्मा से कहा कि भगवन्! हे भारद्वाज! तुम्हारा विज्ञान तो बड़ा नितान्त है। परन्तु मुझे यह क्या हो गया है, यह तरंगें मुझे स्पर्श कर रही हैं, मेरा मन भ्रमित हो गया है। उन्होंने कहा भाई **"विज्ञानां भविते देवाः"** सोमकेतु ने और महात्मा भारद्वाज मुनि ने छह—छह माह का तप किया और तप करने के पश्चात उन्होंने एक तरंग को जाना, एक यन्त्र को जाना, वह यन्त्र ऐसा था जो सहस्त्रों, अरबों, खरबों योजन दूरी कोई क्रियाकलाप हो रहा है और उसकी तरंगें यन्त्रों में निहित होती, दृष्टिपात होती हैं। उन्होंने कहा हे सोमकेतु! तुम्हारे जो वंशलज हैं वह याग कर रहे हैं, परन्तु वह क्रिया से विहीन याग हो रहा है, तमोगुण छाया हुआ है, वह तरंगें आपको स्पर्श कर रही हैं। वह तरंगें यह कहती हैं जो अन्तरिक्ष में कुछ सूक्ष्म आत्माएँ हैं, देवव्रत की प्रवृत्ति, देवलोक है। देवलोक में वह आत्मा जाकर के तुम्हारे अन्तःकरण को, तुम्हारे अशुद्ध क्रिया कलाप कर रहे थे।

मुनिवरो! देखो, महात्मा भारद्वाज और महात्मा सोमकेतु मुनि महाराज दोनों ने गमन किया। वह हिमालय की कन्दराओं में पहुँचे। जो क्रिया से विहीन याग हो रहा था, उस याग में वह परिणत हो गये। जब परिणत हो गये, तो उन्होंने कहा हे वंशलजो! तुम यह याग अशुद्ध क्यों कर रहे हो? क्रिया से विहीन क्यों कर रहे हो? उन्होंने कहा **"सम्भवाः देवो ब्रह्म वाचां वस्तुति देवाः"**। उन्होंने कहा प्रभु! देखो हमारे, पूर्व आचार्यों ने ऐसा ही वर्णन किया है।

परमात्मा का मार्ग

महात्मा सोमकेतु और महर्षि भारद्वाज हिमालय की कन्दराओं में छह—छह माह तक वास करते, उन यागों में परिणत साकल्य एकत्रित करके, याग करते और याग में जो तरंगें उत्पन्न होती, उन्हें जानते रहते उनको क्रिया रूप देते रहते। छह माह के पश्चात् देखो, वह क्रिया कलाप शुद्ध बन गया और शुद्ध बन करके जब मेरे महापिता ने, सोमकेतु ने तप किया तो मानो देखो, अन्तरात्मा सच्चिदानन्द परमपिता परमात्मा के मार्ग का वह पुनः पथिक बन गया। जब वह पुनः पथिक बना तो **"पथिकं ब्रह्मे"** दोनों प्रकार के विज्ञानवेत्ता भौतिक विज्ञान आध्यात्मिक विज्ञान दोनों में रत हो करके उनकी ऊर्ध्वा गति बन गयी।

मन की पवित्रता

तो मेरे प्यारे! विचार विनिमय क्या? वेद के ऋषि ने कहा, महात्मा कवन्धी ने कहा है हमारे इन वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय केवल इतना है कि साधना में भी रत हो करके उसके मन से सम्बन्धित जो प्राणी होते हैं उनसे मानव को निर्मोही हो करके, उन्हें शिक्षित बना करके यदि मानव तपस्या के लिये परिणत होता है, तो उस तपस्या में वह सफलता को प्राप्त होता है। वह महान बनता है, पवित्र बनता है, तो इसीलिये यदि हम मन को पवित्र बनाना चाहते हैं, मन को पवित्र बनाने का नाम ही तप कहलाता है और यह मनुष्य काल में ही महान बनेगा क्योंकि इसके सम्बन्धी जितने भी हैं, उनका शोधन करना उनके ऊपर अधिपत्य करना, उनको तपस्या में परिणत करना या उससे उपराम होना है। उपराम होने के पश्चात् ही मानव की प्रवृत्तियाँ ऊँची बनती है। महात्मा कवन्धी इस वाक् को उच्चारण करके अपने आसन पर मौन हो गये। जब मौन हो गये, तो मुनिवरो! देखो, विचारधारा समाप्त होने वाली नहीं।

मुनिवरो! देखो, तो उस समय महात्मा भुंजु ने यह कहा—कि हे अर्धभाग! उच्चारण करो **'सम्भवा देवो ब्रह्मवाः अर्धभागं ब्रहेव्रताम्'**।

माता वसुन्धरा का गर्भ

अर्धभाग ने कहा कि महात्मन्! मैं जानना चाहता हूँ कि माता वसुन्धरा का गर्भ क्या है? तो जब माता वसुन्धरा का वर्णन आया, तो उस समय मुनिवरो! देखो!, महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज उपस्थित हो गये और महात्मा भारद्वाज मुनि ने कहा कि तुम माता वसुन्धरा के गर्भ को जानना चाहते हो? उन्होंने कहा—प्रभु! यही हमारी इच्छा है। उन्होंने यन्त्र का निर्माण किया था, विज्ञान के युग में प्रवेश हो करके और वह यन्त्र ऐसा था कि माता के गर्भ में जब एक शिशु का प्रवेश होता है तो सब देवता उस शिशु के अंग संग हो जाते हैं। जब माता के गर्भ में वह बिन्दु प्रवेश हुआ, आपो जब प्रवेश हुआ, शिशु का जब प्रवेश हो गया तो मुनिवरो! देखो, यन्त्र भारद्वाज मुनि ने स्थिर कर दिया और यन्त्र में माता के गर्भाशय में कैसे शिशु का निर्माण होता है शिशु की

कौन–कौन रक्षा करते हैं, शिशु की रक्षा करने के लिये पृथ्वी अपने गुरुत्व को ले करके चली गयी और यह आपो, जलो अप्रतम् शीतलता को ले करके चला गया और मुनिवरो! अग्नि ऊष्णता, ऊष्ण शक्ति प्रदान करने लगी और सूर्य प्रकाश देने लगा, चन्द्रमा अमृत देने लगा और अन्तरिक्ष अवकाश देने लगा, सब देवता उस शिशु की रक्षा में लग गये, जब शिशु की रक्षा में लग गये देखो, शिशु अपने पूर्णत्व को प्राप्त हो करके देवताओं के, देवता अपने–अपने स्थान में जब परिणत हो गये, तो वही मुनिवरो! देखो, माता वसुन्धरा से पृथक् हुआ तो पृथ्वी के गर्भ में परिणत हो गया।

तो मेरे प्यारे! देखो, भारद्वाज मुनि महाराज ने एक यन्त्र ऐसा निर्माण किया था जो यह मानव का शरीर है, इसमें देवता परमाणुवाद कैसे हुआ करते रहते हैं? कैसे युवावस्था को, बाल्य से युवा बनता रहता है वह यन्त्र दृष्टिपात आने लगा, यन्त्रों में चित्र मेरे पुत्रो! वह जो चित्रावलियों में चित्र दृष्टिपात आते थे, उसमें सब परमाणु जैसे–जैसे आते रहते वे उसमें दृष्टिपात कराते रहे। कराते–कराते ऊर्ध्वा की गति उनकी उड़ान में परिणत हो गयी। वसुन्धरा कहीं नाना प्रकार के खनिजों के परमाणु आ रहे हैं। कहीं खाद्यान्न के आ रहे हैं, कहीं रत्नों के आ रहे हैं, कहीं यह स्वर्ण के परमाणु आ रहे हैं वह उससे मानव का जीवन बलिष्ठ बन रहा है।

तो मुनिवरो! आज के वाक् उच्चारण कहने का अभिप्राय यह कि हम उस प्रभु की महिमा का गुणगान गाते हुए, अपनी इन्द्रियों पर, मन पर संयम करते हुए, इनका पंचीकरण करते हुए इस विचित्र संसार को दृष्टिपात करके जिसकी मुनिवरो! देखो, कोई सीमा नहीं है, इसके सार और तथ्य को जानकर, स्वयं में ही उस प्रभु का दिग्दर्शन करने की साधना द्वारा, तप द्वारा प्रयत्न करते हुए अपने मानव जीवन को सफल करने का प्रयास करें। यही हमारे ऋषि–मुनियों ने अपने जीवन– दर्शन द्वारा हमको दर्शाया और उस परमपिता परमात्मा की महती का चिन्तन करते हुए इस संसार सागर से पार हो जायें। ये है आज का वाक्, ये हमारा वाक् समाप्त होने जा रहा है। समय मिलेगा तो शेष चर्चाएँ कल करेंगे। अब वेदों का पाठ।

2.10.1984
कासिमपुर खेड़ी, बागपत

याग से राष्ट्र की ऊर्ध्वागति

जीते रहो,

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेद–मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन–पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि प्रत्येक वेद मन्त्र उस परमपिता परमात्मा की गाथा गा रहा है अथवा उसका वर्णन कर रहा है। जितना भी यह जड़ जगत् अथवा चैतन्य जगत् हमें दृष्टिपात आ रहा है, उस सर्वत्र ब्रह्माण्ड के मूल में प्रायः मेरा वो देव दृष्टिपात आ रहा है, मानव भिन्न–भिन्न प्रकार की अपनी उड़ानें उड़ता रहता है।

जीवन की पवित्रता

परन्तु मुनिवरो! देखो, विज्ञान में भी भिन्न–भिन्न प्रकार की उड़ानें उड़ी जाती हैं। यह मैं कोई नवीन वाक् प्रगट करने नहीं जा रहा हूँ, क्योंकि परम्परागतों से ही मानव अपने विज्ञान में उड़ाने उड़ता रहा है। नाना प्रकार की उड़ानें उड़ने वालों में अन्तिम उनका जो चयन रहा है, अन्तिम जो उनका मन्तव्य रहा है, वो यह रहा है कि संसार के मूल में कोई चेतना कार्य कर रही है और उसका अपना कोई क्रिया–कलाप है। उसी क्रिया–कलाप के आधार पर प्रत्येक मानव, प्रत्येक प्राणी अपने में रत हो रहा है। मुनिवरो! देखो, जब मानव विज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश करता है, तो दोनों प्रकार के विज्ञान के ऊपर उसका अधिपत्य होना चाहिए, क्योंकि एक भौतिक विज्ञान है और द्वितीय आध्यात्मिक विज्ञान है। परन्तु भौतिक विज्ञान के मार्ग से होता हुआ, गति करता हुआ और वह मुनिवरो! देखो, आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करता है और जब वह आध्यात्मिकवाद में जाता है, तो वहाँ प्रकाश और उसके जीवन में दिवस ही दिवस प्रतीत होता है। अथवा शुक्ल पक्ष रहता है जीवन में। परन्तु जब उससे उपरान्त मानवीयत्व के क्षेत्रों में, आध्यात्मिक प्रतिक्रियाएँ, हृदयों में ही स्पष्टीकरण रहती हैं, तो मानव का जीवन पवित्र और महान बनने लगता है।

आध्यात्मिक विज्ञान की आवश्यकता

राजा के राष्ट्र में, राष्ट्रीयता में आध्यात्मिकवाद का ही अपना अस्तित्व रहता है। परन्तु यदि राजा के राष्ट्र में नियम, नियमावलियों में आध्यात्मिकवाद नहीं है तो उस राजा के राष्ट्र की प्रतिभा भी नहीं रहती। मुनिवरो! देखो, मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब ऋषि–मुनि अपने क्षेत्रों में रत हो करके, एक–एक वेद मन्त्र के ऊपर प्रायः अनुसन्धान करते रहते थे। अथवा अन्वेषण करते रहते थे और विचारते रहते थे कि मानवीयता अपने में प्रतिभाषित रहती है। जिससे मानव के जीवन में एक महान् अग्नि जागरूक हो जाती है। इस अग्नि का वह चयन करता हुआ, नाना प्रकार की अग्नियों का चयन करता हुआ, आध्यात्मिक विज्ञान में प्रवेश हो जाता है।

महर्षि भारद्वाज की विज्ञानशाला

तो मेरे पुत्रो! देखो, मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जिस काल में ऋषि–मुनियों की एक गोष्ठी हुई, महर्षि भारद्वाज मुनि के यहाँ। तो भारद्वाज मुनि के यहाँ एक–एक वस्तु पर अन्वेषण और विचार–विनिमय होता रहता था। जब मुनिवरो! देखो, वह काल स्मरण आता है जो प्रायः जीवन की एक–एक वृत्तियाँ ज्ञान और विज्ञान के ऊपर निहित हो जाती हैं। मुझे स्मरण आता रहता है कि भारद्वाज मुनि के यहाँ नित्यप्रति याग होता रहता था। एक समय ब्रह्मचारी कवन्धी और गार्हपथ्य तो मुनिवरो! देखो, दोनों ब्रह्मचारी प्रातःकालीन महर्षि भारद्वाज मुनि के कक्ष में पहुँचे। भारद्वाज मुनि ने कहा हे ब्रह्मचारियो! तुम्हारा आगमन क्यों हुआ? प्रातः कालीन मेरे कक्ष में आने का कोई मूलक है? उन्होंने कहा–हे भगवन्! आज प्रातःकालीन कुछ ऋषियों का आगमन हुआ है और वह ऋषि–मुनि अपने में कुछ चाहते हैं, आपको स्मरण किया जा रहा है। भारद्वाज मुनि बोले–बहुत प्रियतम्; अपना आसन त्याग करके वह उस काल में ब्रह्म का चिन्तन कर रहे थे, क्योंकि मानव प्रातः कालीन जब ब्रह्म का चिन्तन करता है, तो वह गार्हपथ्य नाम की अग्नि का चयन करता है। गार्हपथ्य नाम की अग्नि को प्रदीप्त करता है। जिससे गृह में बाल्य–बालिका ब्रह्म–जिज्ञासा में रत हो जायें। जब उन्होंने **'अश्वतो ब्रह्मवाचन्नमः वृणहो अस्वति वाचन्नमाः'** ऐसा उन्होंने अपने में कहा कि **'वासो अस्त्रं ब्रह्मवाचा'** भारद्वाज मुनि महाराज ब्रह्म याग को शान्त करते हुए, ऋषि के द्वार पर पहुँचे, उनमें कौन ऋषि थे?

महर्षि भारद्वाज के आश्रम में ऋषियों का आगमन

महर्षि भारद्वाज मुनि के यहाँ उद्यालक गोत्रीय ऋषि शिकान्तकेतु और उनकी पत्नी स्वेहलता, सम्भूति, अश्तो ब्रह्मचारी ऋषि के समीप आये। भारद्वाज मुनि महाराज ने उनसे मिलन किया और मिलन करने के पश्चात् उन्होंने कहा–कहो, भगवन्! क्या इच्छा है? आपकी क्या उत्सुकता है? तो उन्होंने कहा, शिकान्तकेतु ऋषि ने कि प्रभु! आज हम गन्धर्व राष्ट्र से आ रहे हैं और उस गन्धर्व राष्ट्र में काव्याम् रहते हैं और काव्याम् के गृह में ही देव पूजा होती रहती है। तो प्रभु! हम उस देव पूजा के सम्बन्ध में जानना चाहते हैं कि देव पूजा क्या है?

देवताओं का मुख

तो मुनिवरो! देखो, उस समय ऋषि भारद्वाज मुनि ने कहा, वह जो काव्याम् के गृह में याग हो रहा है, वह जो उनके यहाँ देव–पूजा हो रही है। याग का नामोकरण ही देव पूजा कहलाती है और उस देव–पूजा का जो सम्बन्ध है उसका सम्बन्ध अग्नि से विशेषकर रहता है। अग्नि का चयन किया जाता है क्योंकि अग्नि देवताओं का मुख कहलाता है और उस अग्नि में ही अपने को निगल करके वह भेदन कर रही है। जब प्रत्येक पदार्थ का वह भेदन कर देती है तो काव्याम् के गृह में वर्षों से याग चल रहा है; वर्षों से देव याग हो रहा है। इसीलिये देव याग के सम्बन्ध में तुम क्या जानना चाहते हो? उन्होंने कहा–भगवन्! देवयाग तो हम भी कर रहे हैं, हमें लगभग बीस वर्ष हो गये हैं देवयाग करते हुए और देवताओं का हम चित्रण भी अपने में पान करते रहते हैं, परन्तु हमारी शंका बनी रहती है। एक समय भगवन्! अकाल पड़ गया। अकाल के आने के पश्चात् भयंकर वनों में, पर्वतों से हमने कुछ साकल्य एकत्रित किया। और उस साकल्य के एकत्रित करने से जब हमने अग्नि के मुख में यह साकल्य प्रदान किया तो अग्नि ने उसका भेदन करके वृत्ति कर दी और अकाल की प्रवृत्तियाँ समाप्त हुई। तो क्या भगवन्! इसी को हम देवयाग स्वीकार कर लें?

देवयाग

परन्तु मुनिवरो! देखो, भारद्वाज मुनि ने कहा कि वास्तव में यह देवयाग का एक अंग है। देवयाग में तो संसार की प्रत्येक वस्तुओं का चयन होने लगता है, देवयाग का अभिप्राय तुमने जाना कि यजमान अपनी मानव देह के द्वारा याग करता है जैसे काव्याम् के गृह में कई वर्षों से याग चल रहा है और वह जो याग है वह काव्यामि कहलाता है। जहाँ देवता है वहाँ अग्नि का चयन करना। हमारे मानव शरीर में जो जल–अग्नि–तेज–वायु अपना कार्यकर रहे हैं अथवा उनका जो क्रिया–कलाप हो रहा है, उसको हम बाह्य जगत् में लाते हैं। तो बाह्य जगत् और आन्तरिक जगत् दोनों का समन्वय करने का नाम देवयाग कहलाता है।

देवयाग की क्रिया का चित्रण

मुनिवरो! देखो, जब यह देवयाग का वर्णन आया तो ऋषि भारद्वाज मुनि महाराज अपने में, प्रतिभा से और अनुसन्धान में रत हो गये। उद्यालक गोत्रीय शिकान्तकेतु ऋषि बोले–कि प्रभु! वह क्रिया में कैसे लाया जाये, कैसे हम उसे दृष्टिपात कर सकते हैं? तो मुनिवरो! ऐसा मुझे कुछ स्मरण है, कि वह उन्हें अपनी यज्ञशाला में ले गये और यज्ञशाला में जैसे ही उन्होंने उद्गाता बन करके याग प्रारम्भ किया, तो उनके यन्त्रों में चित्रों का चित्रण होने लगा। उन्होंने कहा–देखो, ऋषिवर! यह तुम्हारा जो सार्थक साथ में जो आकार जा रहा है यह द्यौ–लोक में प्रवेश करेगा। जहाँ से सूर्य अपनी ऊर्ध्वा को पा करके प्रकाश देता रहता है, सूर्य प्रकाशमान बनाता रहता है, इसीलिये तुम्हारी जो देवपूजा का जो स्वाहा शब्द है, वह द्यौ–लोक में प्रवेश करता है, वह द्यौ–लोक में स्थिर हो जाता है और द्यौ–लोक में उसकी प्रतिभा एक विचित्र और मानवीयता की आभा में निहित हो जाती है। तो जब ऋषि ने यह वाक् कहा तो मुनिवरो! देखो, उन्हें शान्ति स्थापित हो गयी। उन्होंने कहा–प्रभु! आओ, आज हमारे राष्ट्र, **"विज्ञानं ब्रह्मः वाचो"** हम बहुत समय से याग कर रहे हैं भगवन्! आप हमारे आश्रम को चलो।

मेरे प्यारे! भारद्वाज ने उनकी आराधना को स्वीकार कर लिया उद्यालक गोत्रीय ऋषि साथ में, उनके द्वारा वाहन था, वाहन में विद्यमान हो करके अपने आश्रम में ले गये। विन्ध्याचल पर्वतीय क्षेत्रों में जब उन्हें ले गये तो वहाँ मार्ग में भ्रमण करते हुए, उन्हें स्वाति महाराज के दर्शन हुए।

महर्षि स्वाति महाराज द्वारा प्राण–सूत्र व विष्णु की व्याख्या

तो स्वाति ऋषि महाराज ने कहा–भगवन्! विराजिये, वे विराजमान हो गये उनका अतिथि करने के पश्चात् उन्होंने प्रश्न किया–कहो, स्वाति जी आपका क्या क्रिया कलाप चल रहा है? उन्होंने कहा–कि मैं तो सदैव प्रभु का चिन्तन करता रहता हूँ। आध्यात्मिक विज्ञान और भौतिकवाद दोनों को विचार रहा हूँ। क्योंकि यदि राजा को अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाना है, तो उसे याग के क्रिया–कलाप में रत होना होगा। और वह अपने राष्ट्र को देखो, राष्ट्रीयता में एक प्रतिभा का प्रायः दर्शन होता है। जब स्वाति ऋषि ने यह वाक् कहा तो मुनि बोले कि एक समय मैं कागभुषुण्डी जी और लोमश जी के द्वार पर पहुँचा। तो उन दोनों का संवाद मैंने श्रवण किया। तो महर्षि लोमश और कागभुसुन्डी जी दोनों विज्ञान के ऊपर अपना क्रिया कलाप, अपने में तत्पर हो करके आध्यात्मिकवाद में प्रवेश होना चाहते थे। जब वह प्रवेश होने के लिये तत्पर हुए तो अपने प्राण–सूत्र को, अपने में सूत्रित करने का उन्होंने प्रयास किया, तो आभा में परिणत हो गए। इसी आभा को ले करके जब मैंने उनसे यह प्रश्न किया कि महाराज। यह विष्णु क्या है? क्योंकि वेद में विष्णु का वर्णन आता है। हमारे आज के वेद के पठन–पाठन में भी विष्णु की प्रतिभा आयी थी। तो विष्णु किसे कहते हैं?

महर्षि कागभुषुण्डी जी के विष्णु सम्बन्धी विचार

तो कागभुषुण्डी जी ने कहा–कि विष्णु नाम तो प्रायः परमपिता परमात्मा को माना गया है, परन्तु देखो, वह पालन करने वाला है, वह पालना करता रहता है। वह नम्र और उदारता में रत रहने वाला है, इसीलिये परमपिता परमात्मा को हमारे यहाँ विष्णु के रूप से वर्णन किया है। देखो, जो भी पालन करने वाली प्रतिक्रियाएँ दृष्टिपात होती हों, वही विष्णु कहलाती है। माता जब अपने पुत्र का पालन करती है, अथवा बाल्य का पालन करती है, तो उस माता को विष्णु की संज्ञा प्रदान की जाती है। जब यह योगेश्वर अपनी आध्यात्मिक मुद्रा में प्रवेश करता है, आध्यात्मिकवाद में चला जाता है, तो उस समय आत्मा को आत्ममुद्रा में जाकर के वह विष्णु कहलाता है। परन्तु मुनिवरो! देखो, विष्णु शब्द के बहुत से रूपान्तरों में परिवर्तित होने वाला, यह विष्णु शब्द माना गया है। उस समय **'मंङ्ल वृताम्'** कागभुषुण्डी जी ने विष्णु का निर्णय किया कि जो आत्म तत्त्वों को जानने वाला, अथवा आत्म तत्त्व क्या? जो अपनी इन्द्रियों का संयम करने वाला हो, वह विष्णु कहलाता है। वह वेद के पठन पाठन में, वेद की प्रतिभा में सदैव रत रहता हुआ अपने को ऊर्ध्वा और ऋषियों को प्राप्त होता रहता है।

तो आओ मेरे प्यारे! मैं विशेष विवेचना तो तुम्हें देने नहीं आया हूँ। केवल तुम्हें परिचय देने के लिये आया हूँ, वह परिचय क्या है? देखो, स्वाति ने अपना परिचय दिया कि महाराज मुझे बहुत समय हो गया है यहाँ तपस्या करते हुए। वहाँ से शिकान्तकेतु उनकी पत्नी स्वेहलता और मुनिवरो! देखो, महर्षि भारद्वाज, ब्रह्मचारी कवन्धी को ले करके भ्रमण करते हुए वह विन्ध्याचली अपने आसनों पर विद्यमान हो गये। जब विन्ध्याचली पर्वतों पर पहुँचे, तो मुनिवरो! देखो, वह याग कर रहे थे। शिकान्तकेतु ने कहा–प्रभु! मैं बहुत समय से याग कर रहा हूँ, परन्तु मैं याग में अपने पूर्वजों का प्रायः दर्शन करना चाहता हूँ और पूर्वज चित्रों में मैं चित्रित होता रहता हूँ। मेरे लिये वह चित्रित होते रहते हैं, हमारा जो गोत्र है वह उद्यालक गोत्रीय है। बहुत समय से यह भारद्वाज गोत्रों में विज्ञान की प्रतिभा का प्रायः दर्शन होता रहता है।

हृदय एवं अन्तरिक्ष की समानता

हम दोनों पति पत्नी प्रातः कालीन याग कर रहे हैं और यागों में परिणत हो करके, हम अपने पूर्वजों का दर्शन करना चाहते हैं। अहा, पूर्वजों का जो दर्शन है वह मानवीयता में नहीं, यश में सदैव निहित रहता है। तो विचार क्या, उन्होंने नाना यन्त्रों को दृष्टिपात कराया कि महाराज! मैंने अपने यहाँ यन्त्रों का निर्माण किया है और यन्त्रों में यह विशेषता रही है, कि हमारे जो पिता, महापिता, पड़पिता जो अन्तरिक्ष में, शब्दों के साथ में जिनका चित्र भी रहता है, क्रिया–कलाप भी रहता है। वह चित्र और क्रिया कलाप के सहित यन्त्रों में उनका चित्र दृष्टिपात आ रहा है। हम जो भी कुछ क्रिया–कलाप करते रहते हैं,

वह अन्तरिक्ष में, शब्द के साथ में लय होता रहता है। जैसे मानव के हृदय में प्रत्येक इन्द्रियों का जो समावेश हो जाता है, प्रत्येक इन्द्रियों का जो समावेश है वह प्रतिभाषित कहलाता है। इसी प्रकार आज जब हम इस विचार को लेते हैं कि हमारा जो चित्र शब्दों के साथ में अन्तरिक्ष में, आकाश में लय होता है। जैसे प्रत्येक इन्द्रियों का जो विषय है वह मानव के हृदय में समाहित हो जाता है। यह जो हृदय चित्ताकाश, अन्तरिक्ष कहलाता है।

इन्द्रिय विज्ञान की विवेचना

मैंने तुम्हें बहुत पुरातन काल में कहा है–कि मानव नेत्रों से संसार के स्वरूप को दृष्टिपात कर रहा है और वह मुनिवरो! देखो, उसकी जो स्थिति है, रूप की जो स्थिति है वह हृदय में समाहित हो जाती है। नाना प्रकार की हम प्रीति में लय हो जाते हैं, माता की ममता में लय हो जाते हैं, तो माता का हृदय पुत्र की छाया बन करके रहता है और उसकी स्थिति कहाँ है? हृदय में रहती है। मुनिवरो! इसी प्रकार नाना प्रकार की सुगन्ध को लेते हैं और वह सुगन्ध का जो प्रतिनिधित्व करने वाली है वह पृथ्वी कहलाती है, वह वसुन्धरा कहलाती है, वह पृथा कहलाती है। उसकी सुगन्ध को ले करके उसकी स्थिति पर विचार करें कि सुगन्ध कहाँ लय होती है, तो वह सुगन्ध हृदय में रहती है। इसी प्रकार शब्दों का प्रतिपादन हो रहा है, शब्दों के साथ में चित्र गति कर रहे हैं, उसकी स्थिति हृदय में रहती है। रसना नाना प्रकार के रसों का स्वादन लेने लगती है, नाना प्रकार के षड्–रसों का रसना जब स्वाद लेती है, तो उसकी स्थिति भी हृदय में समाहित हो जाती है। इसी प्रकार यह जो चित्त–अन्तरिक्ष है जो चित्ताभास कहलाता है। इसीलिये इसमें प्रत्येक इन्द्रियों का विषय समाहित हो जाता है ऐसे ही मानव का जो हृदय है वह बाह्य जगत् है। बाह्य जगत् का अन्तरिक्ष में लय हो जाता है। प्रत्येक धारा में जब लय होता है, क्रिया–कलाप में भी लय होता है, आकार भी उसी में लय होता है। उसमें प्रतिभाषिता दृष्टिपात आने लगती है।

महर्षि शिकान्तकेतु का विज्ञान

जब ऋषि ने इस प्रकार निर्णयात्मक किया कि हाँ महाराज! हम उस चित्ताभास को अपने में भासना चाहते हैं, तो यन्त्रों में उनके पूर्वजों के जो शब्द अन्तरिक्ष में गति कर रहे थे, उनका चित्र क्रिया–कलाप ज्यों–ज्यों क्रिया कलाप करते थे, उनका चित्र यन्त्रों में दृष्टिपात आता था। एक पिता नहीं, दो पिता नहीं, पचासवें महापिता का दिग्दर्शन कर रहे हैं। सोवें महापिता का दर्शन कर रहे हैं। मुनिवरो! देखो, जब ऋषि ने यह वाक्य दृष्टिपात किया तो भारद्वाज मुनि बोले कि महाराज! विज्ञान तो मानव की एक मौलिकता कहलाती है, एक स्वाभाविक गुणावधान कहलाता है।

महर्षि भारद्वाज का विज्ञान द्वारा संगतिकरण

यह जो तुमने मुझे दृष्टिपात कराया है इसके ऊपर हम भी अनुसन्धान अथवा अन्वेषण कर रहे हैं और इसके ऊपर विचार रहे हैं कि यह कितना ऊर्ध्वा में गति कर सकता है। तो इसी प्रकार हम प्रातः कालीन याग कर रहे हैं और याग के पश्चात् परमाणुओं को हम देवपूजा में लाते हैं, उन परमाणुओं के ऊपर जब हम अन्वेषण, विचार विनिमय में करते हैं तो अन्तरिक्ष में, क्रिया कलाप में परिणत हो जाते हैं, तो परिणाम क्या? यह जो विज्ञान है यह मानव का मौलिक गुण कहलाता है। आज का हमारा वाक्य क्या कह रहा है? हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए चले जायें।

मुनिवरो! देखो, उन्होंने भारद्वाज मुनि से देवपूजा के सम्बन्ध में जो प्रश्न किया था उन्होंने कहा देव पूजा उसी को कहते हैं जहाँ देवत्व की भावना, मानव के अन्तःकरण में उत्पन्न हो जाये और उसका संगतिकरण हम अच्छी प्रकार जानते हुए अपने को संगतिकरण में आभाहित करते चले जायें। तो विचार–विनिमय क्या? मैं तुम्हें विशेष विवेचना देने नहीं आया हूँ, मैं कोई व्याख्याता नहीं हूँ केवल परिचय देने के लिये चला आता हूँ और वह परिचय क्या है? कि यह जो ज्ञान और विज्ञान है यह हमारा जन्मसिद्ध अधिकार रहेगा। इस पर परम्परागतों से मानव अपनी उड़ान उड़ता रहता है और उड़नी चाहिए क्योंकि उड़ान उड़ना मानव की एक मौलिकता कहलाती है। तो विचार विनिमय क्या? ऋषि ने भारद्वाज मुनि को देवपूजा के द्वारा देवताओं का दिग्दर्शन कराया और उन दर्शनों को पान करके भारद्वाज अपने में मग्न, अपने में रत हो गये।

अध्यात्म की प्रेरणा के स्रोत

तो मुनिवरो! देखो, भारद्वाज मुनि ने यह एक प्रश्न किया–महाराज! तुम्हारा यह गोत्र **'उत्पन्नं भविते देवाम्'** जो तुम्हारा यह क्रिया–कलाप चल रहा है, तुम्हारी जो प्रतिभा अपने में रत हो रही है यह भावना तुम्हें कहाँ से उत्पन्न हो रही है? क्योंकि उद्यालक गोत्र में तो नाना ब्रह्मवेत्ता हुए हैं, कुछ वैज्ञानिक भी हुए हैं, परन्तु तुम्हारे हृदय में यह पिपाशा कैसे जागरूक हुई है? उन्होंने कहा–कि भगवन्! जब मैं बाल्य काल में अपनी माता के आँगन में क्रीडा करता रहता था तो माता मुझे विज्ञान की धाराओं में, विज्ञान के वांगमय में मुझे ले जाती और विज्ञान की धाराओं में मैं रत हो जाता। तो वह शब्द, माता की शिक्षा मेरे हृदयपटल पर अंकित हो रही है और वह जो हृदयपटल पर अंकित हो गयी है, उस अंकित के काव्य से ही मेरी प्रबल आयु होने पर मैं इसमें रत हो गया, मेरा हृदय अगम्यता में परिणत होता हुआ, अपनी प्रतिभा में सदैव मग्न होता रहा है। इस समय विज्ञान में, चित्रावलियों में सफलता को प्राप्त कर रहा हूँ। उद्यालक गोत्र जो यह विशेष वशिष्ठ गोत्र कहलाता है इनमें **"मात्रो भू सम्भवाः"** माताओं का बड़ा अस्तित्व रहा है। माताओं ने भिन्न–भिन्न प्रकार की शिक्षा देकर के हमें ऊर्ध्वा में पहुँचाने का प्रयास किया। तो मेरे प्यारे! देखो, उस समय शिकान्तकेतु ऋषि ने यह वाक्य कहा तो उनकी जो पत्नी थी, पाराशर गोत्र में उनका जन्म हुआ था, शासन का परिवर्तन हुआ, परन्तु देखो, उन्होंने यह कहा–बेटी! तुम्हारे हृदय में यह भावना कहाँ से जागरूक हुई।

आध्यात्मिकवाद

तो मुनिवरो! देखो, उन्होंने कहा–मेरी जो माता थी, मेरे जो पिता थे वे विज्ञान में पारंगत रहते थे। महर्षि वैशम्पायन, मेरे पिता कहलाते थे। मैं बाल्यकाल से ही देखो, जब वे अनुसन्धान करते थे, मैं प्रातः कालीन, मध्यकालीन पिता के द्वार पर विद्यमान हो करके, मैं प्रायः उनके विचारों का जो अनुसन्धान, जो क्रिया–कलाप वह चाहे प्राणसूत्र में हो चाहे मनोसूत्र में हो उसे मैं सदैव अपने में धारण करती रहती थी। वह मेरे हृदय में प्रायः जब समाहित हो गया, तो मेरा हृदय महानता में परिणत हो गया। परिणाम क्या? मुझे ऐसे पति का संग प्राप्त हुआ, जिससे हम दोनों एक दूसरे की संगतिकरण में परिणत हो गये और उसके पश्चात् हमने विज्ञान में, आध्यात्मिकवाद में दोनों में रत होने का प्रयास किया। भौतिकवाद शब्दों तक निहित रहता है, परन्तु आध्यात्मिक विज्ञान परमात्मा के राष्ट्र में ले जाता है, जहाँ परमात्मा के राष्ट्र में रात्रि नहीं होती, वहाँ सदैव प्रकाश ही प्रकाश रहता है। और जहाँ प्रकाश होता है वहाँ रात्रि नहीं होती और जहाँ रात्रि नहीं होती वहाँ आलस्य और प्रमाद नहीं होता और जहाँ आलस्य और प्रमाद नहीं होता वहाँ बेटा! सदैव प्रकाश ही प्रकाश रहता है, उसे आध्यात्मिकवाद कहते हैं तो जब उन दोनों प्राणियों ने यह वाक्य प्रगट कराया, उद्यालक गोत्र में ऐसी महान् देवी ने कहा–कि पाराशर गोत्र में भी इसी प्रकार के विज्ञानवेत्ता हुए हैं।

गृह की सुन्दरता

आज मैं विचार देता हुआ बेटा! दूरी में न चला जाऊँ। विचार देने का अभिप्राय क्या है? कि हम मुनिवरो! देखो, प्रत्येक दशा में आध्यात्मिक और भौतिक विज्ञान दोनों की उड़ानें उड़ने का प्रयास करें। जिससे प्रत्येक तन्तु को एक प्राण सूत्र में पिरोया हुआ स्वीकार करके, सागर से पार हो जायें। जहाँ नाना प्रकार की गार्हपथ्य नाम की अग्नि का चयन करने वाले पति–पत्नी गृह को सुन्दर बनाते हैं, गृह को सुलभ बनाते हैं, वह विज्ञान के वांगमय में रहता है। परन्तु देखो, वह ऋषियों में आधारित हो करके, अपने में प्रेम सुसज्जित बन करके सागर से पार होता है।

यह है बेटा! आज का वाक्, आज का विचार क्या? प्रत्येक वेद मन्त्र उस परमपिता परमात्मा की गाथा गा रहा है अथवा परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान का वर्णन कर रहा है, क्योंकि जितना भी यह जड़ जगत और चैतन्य जगत् हमें दृष्टिपात आता है उस सर्वत्र ब्रह्माण्ड के मूल में वह मेरा देव दृष्टिपात आ रहा है। कहीं तक भी मानव अपनी प्रवृत्तियों को ले जाये परन्तु देखो, उससे अन्तिम छोर में भी कोई न कोई मानव को दिशा प्राप्त होती है, वही चेतना अपना क्रिया कलाप कर रही है। बेटा! माता अपने में वसुन्धरा बन करके अपने में धारण कर रही है, वह वसुन्धरा चाहे जननी के रूप में हो, चाहे वह पृथ्वी के रूप मे हो, चाहे वह प्रभु के रूप में हो, परन्तु वह वसुन्धरा कहलाती है। उसी में हम सब वशीभूत हैं क्रिया–कलाप चल रहा है, ज्ञान और विज्ञान दोनों प्रकार का आध्यात्मिक और भौतिक दोनों मानव की प्रवृत्तियों में निहित रहता है। परमपिता परमात्मा का जो अगम्य हृदय है इसे अन्तरिक्ष, आकाश कहते हैं, इसमें संसार का प्रत्येक परमाणु समाहित रहता है, परन्तु प्रत्येक परमाणु अपने में क्रियाशील हो रहा है। इसीलिये आज हम उस परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए, संसार सागर से पार हो जायें। यह है बेटा! आज का वाक् अब मुझे समय मिलेगा तो मैं तुम्हें शेष चर्चाएँ कल प्रगट करूँगा।

आज का वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि आज हमने कुछ बिखरे हुए पुष्पों को एकत्रित किया और वह यह कि हम अपने में अग्न्याधान, देवपूजा में सदैव तत्पर रहें और हम प्रातः कालीन ब्रह्म याग में तत्पर रहें। यह है बेटा! आज का वाक्। अब समय मिलेगा तो मैं तुम्हें शेष चर्चाएँ कल प्रगट करूँगा अब वेदों का पठन–पाठन।

21.11.1984

अहिंसामय राष्ट्र

जीते रहो,

देखो, मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन–पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहा है। जिस पवित्र वेदवाणी में उस महामना, मेरे देव की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि प्रत्येक वेदमन्त्र एक माला के सदृश्य माना गया है जिस प्रकार एक सूत्र में नाना प्रकार के मनके पिरोये जाते हैं। उसी प्रकार प्रत्येक वेदमन्त्र पूर्णरूपी सूत्र में पिरोये जाते हैं।

संसार रूपी सूत्र

मुनिवरो! देखो, जितना भी यह ज्ञान और विज्ञानमयी जगत् है। उसका कोई न कोई सूत्र अवश्य है। उस सूत्र के ऊपर हमारे ऋषि मुनि परम्परागतों से प्रायः अनुसन्धान करते रहे हैं और उस संसार को मापते रहते हैं और विचारते रहते हैं कि यह ब्रह्माण्ड का, लोक लोकान्तरों का एक अनुपम जगत् हमें दृष्टिपात आ रहा है। यह जो नाना प्रकार के लोक–लोकान्तरों की एक माला बनी हुई है। जब भी आकाशगंगा में या नाना निहारिकाओं में तुम प्रवेश करोगे तो तुम्हें अनन्तमयी ब्रह्माण्ड का दिग्दर्शन होता है और जो अनन्तमयी ब्रह्माण्ड है उसका कोई सूत्र है जैसे मनके और धागे का समन्वय हो करके माला बन जाती है। माला का अपने में कोई अस्तित्व नहीं है, परन्तु दोनों के समन्वय से तृतीय शब्द की उत्पत्ति हो जाती है। जैसे हमारे यहाँ चैतन्य और जड़ का दोनों का समन्वय होता है। जड़ और चैतन्य दोनों का समन्वय होते ही सृष्टि का शब्द उत्पन्न हो जाता है। तो इसीलिये मनके एक सूत्र में पिरोये हुए होने से माला बन जाती है। इसी प्रकार चेतना और जड़वत् दोनों का समन्वय होने से, दोनों का सन्निधान होने से, इस जगत की रचना, एक सृष्टि के रूप में दृष्टिपात आने लगती है।

वेद मन्त्रों की महत्ता

मुनिवरो! देखो, जैसे आज का हमारा वेदमन्त्र बहुत ऊँची उड़ान उड़ रहा था। क्योंकि प्रत्येक वेदमन्त्र उस ब्रह्म की गाथा गाता रहता है। अथवा उसके गुणों का वर्णन करता रहता है। तो इसीलिये प्रत्येक वेदमन्त्र गान के रूप में रहता है। उद्गाता जब उद्गीत गाने लगता है तो यह भव्य यज्ञशाला पवित्र हो जाती है और वह जो शब्द हैं वह द्यौ–लोक को प्राप्त हो जाते हैं। मेरे पुत्रो! देखो, कई काल में बहुत–सी चर्चाएँ की हमारे यहाँ संसार को मापने वालों ने, इस संसार को भिन्न–भिन्न रूपों में मापने का प्रयास किया है और जिसने भी, इसको जिस रूप में दृष्टिपात किया है वही उसको अनन्तमयी ब्रह्माण्ड दृष्टिपात आने लगता है। इतना अनन्तमयी यह जगत् है क्योंकि मानव जब तक अपना उद्गीत गाता रहता है जब तक वह प्रकृति के तत्वों में, इन्द्रियों के विषयों में जब तक रत रहता है तो वह भी अनन्तमयी है, अन्त में वह मौन हो जाता है और मौन हो करके मुनिवरो! देखो, वह इन्द्रियों का और वाणी का विषय जब नहीं रहता, तो वह अपने में सिमट जाता है। सिमट करके अनन्तमयी सृष्टि को अन्तर्हृदय में दृष्टिपात करने लगता है। उससे वह मौन और अपने में शान्त, ब्रह्म हो जाता है।

महर्षि अथर्वा का शब्द पर अनुसन्धान

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जिस समय ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा ने, एक समय वह अपने भयंकर हिमालय की कन्दराओं में अनुसन्धान कर रहे थे और वह अनुसन्धान क्या कर रहे थे, कि यह जो शब्द है, इस शब्द में अपने में क्या–क्या विज्ञान है। तो इस वाक् को ले करके वह अन्वेषण कर रहे थे, वहाँ मुनिवरो! देखो, महर्षि भृंगी महाराज और शेनवाचक थे। अंगिरस विराजमान हो गये और विचार करने लगे कि यह जो परमपिता परमात्मा ने सृष्टि को रचा है यह एक अनन्तमयी है परन्तु मानव की पिपासा रहती है कि संसार को जानना चाहिए। प्रत्येक वस्तु को जानने की उसकी इच्छा बन जाती है। ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा ने और अंगिरस दोनों ने विचार विनिमय प्रारम्भ किया। एक वेद मन्त्र है और वह वेद मन्त्र यह कहता है **'सर्वोव्रतां अन्तरिक्षौ सम्भवाः वृत्तः देवाः वचं बृहि वाचप्रतो लोकां अन्तरिक्षौ सम्भवाः वृत्ति देवाः'**। यह एक वेद की आख्यायिका है, परन्तु यह ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा ने इसको उच्चारण किया और अंगिरस महाराज ने इसके ऊपर अपनी टिप्पणियाँ प्रारम्भ कीं। उन्होंने कहा–प्रभु! वेद मन्त्र यह कह रहा है कि हम शब्द के ऊपर अन्वेषण और शब्द को जानना चाहते हैं। यह जो शब्द है यह वह ध्वनि है **जितना भी संसार का भौतिक विज्ञान है वह सब इस ध्वनि में समाहित रहता है** और वह जो ध्वनि है वह एक–एक परमाणु के मिलन से, एक–एक परमाणु की, उसके सन्निधान वृत्तियों में रत रहने से वह एक पवित्र ध्वनि है और ध्वनि को जब वैज्ञानिक अपने में धारण करता है और विज्ञान में लाता है तो ध्वनि एक शब्द बन करके, एक आकार बन करके अन्तरिक्ष में वह शून्य बिन्दु तक उसकी प्रतिभा निहित हो जाती है।

वेद रूपी सूर्य की विवेचना

मुनिवरो! देखो, दोनों ऋषि अपने में अनुसंधान करने लगे। वेद मन्त्रों में, क्योंकि मुनिवरो! देखो, वेद एक प्रकाश है वेद एक ऐसी ज्योति है जो मुनिवरो! देखो, इसको धारण कर लेता है वह ज्योतिर्वान हो जाता है, क्योंकि वेद नाम ही प्रकाश को कहा गया है। **वेदां भविते देवाः वंचतत्रप्रहे लोकाम्।** यह वेद एक प्रकाश है। जैसे मानव के नेत्रों का प्रकाश, यह सूर्य है। वह प्रकाश देता रहता है, ऊर्ज्वा देता रहता है और उस ऊर्ज्वा से ही नाना प्रकार के

व्यंजनों में रत हो जाता है, इसी प्रकार वेदां ब्रहे इसी प्रकार मानव का जो अन्तःकरण है उस अन्तःकरण को प्रकाशित करने वाला यह वेद रूपी सूर्य कहा जाता है। यह वेदां भविते देवाम्, जो अनन्तमयी ज्ञान का प्रकाश है जो ज्ञान का पुंज है इसी को हमें अपने में प्रायः धारण करना है। तो वह दोनों विचार विनिमय यही कर रहे थे कि हमें वेद के आश्रित हो करके और उस प्रकाश को अपने में लाना है। शब्दों के ऊपर, ध्वनि के ऊपर अपना निश्चय करके यह जो ध्वनि है यह प्रत्येक कण–कण में से आ रही है, प्रत्येक परमाणु में से आ रही है।

मानव जीवन की पवित्रता का आधार

ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा ने एक परमाणु को जानने का प्रयास किया था उस काल में। वह परमाणु था कि अपने में पवित्र बनने के लिये हमें कौन सी धारा को अपनाना है। तो उन्होंने एक पवित्र धारा की, एक मानव है एक मनस्तव है, अथवा जितने भी प्राणी हैं वह मानव की आभा में रत हो जाते हैं और उसे निहारते रहते हैं। जितने विषधर प्राणी हैं वह भी मानव को आहार करना चाहते हैं। जितना विषैला जगत् है यह मानव के ऊपर ही प्रहार कर रहा है। तो अब अथर्वा ने अंगिरस से कहा कि महाराज! हमें कौन सी धारा को अपनाना है जिससे हमारा उपराम हो जाये। इसके ऊपर विचार विनिमय करते–करते ऋषियों ने अपना निश्चय यह किया कि **अहिंसा परमो धर्मः** को अपना लिया जाये। अहिंसा परमो धर्मः को जो अपना लेता है यह जो विषधर प्राणी है वह भी अपने में शून्य हो जाते हैं, जैसे वेद ध्वनि का **पठन–पाठनं वृहे वाचः ध्वनि।** जब यह ध्वनि आने लगती है तो आत्मतत्व प्रत्येक प्राणी के अन्तर्हृदय में विद्यमान है और वह जो आत्मा है, वह अपने प्रभु का, अपने देव का गुण–गान गाना चाहता है। जब मानव अहिंसा में परिणत हो जाता है, अहिंसा में लय हो जाता है तो उस काल में सिंहराज भी चरणों में हैं और सर्पराज भी चरणों में है जितने भी विषैले प्राणी वह सब इसके चरणों में ओत–प्रोत हो जाते हैं।

माता अनुसूइया का अहिंसा पर अनुभव

बेटा! मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें एक वाक् कहा था। वह आज भी मुझे स्मरण आ रहा है। एक समय माता अनुसूइया और महर्षि अत्रि अपने में कुछ अध्ययन कर रहे थे और कुछ विज्ञान की धाराओं में, कुछ आध्यात्मिक विचार विनिमय में रत हो रहे थे। तो भयंकर वन था वह सम्भवेरातम् चन्द्रमा की रात्रि थी, पूर्णिमा का दिवस था और पूर्णिमा के दिवस में चन्द्रमा अपनी सम्पन्नताओं से युक्त था, प्रकाश दे रहा था। तो कहीं से भ्रमण करते हुए कुछ विषैले प्राणी, सिंहराज भ्रमण करते हुए कहीं से आश्रम के आँगन में आने ही वाले थे। माता अनुसूइया ने कहा–प्रभु! यह मृगराज आ रहा है। उन्होंने कहा–देवी! हमें वेद का गान गाना चाहिए।

तो मुनिवरो! देखो, उन्होंने जब साम गान गाना प्रारम्भ किया जब गान गाने लगे, उद्गीत गाने लगे उद्गीत जहाँ उन्होंने प्रारम्भ किया, अपने हृदय से, सिंहराज अपनी स्थली पर विद्यमान हो गये। जब अपनी स्थली पर विद्यमान हो गया तो विद्यमान हो करके वह उस ध्वनि को श्रवण करने लगा। वेद–ध्वनि को जब श्रवण करने लगा, अपने में पान करने लगा उसका अन्तर्हृदय प्रसन्न चित्त हो गया। तो सिंहराज जहाँ मार्ग में मानव गति कर रहा था, वह सान्त्वना से ध्वनि को पान करने लगा। महर्षि अत्रि ने अनुसूइया से कहा–देवी! कोई भी प्राणी, प्राणी का ह्रास नहीं कर सकता। क्योंकि यह जो मानव की वाणी है, अथवा इसमें जो स्वर है, वेद का जो ज्ञान है, वेद की जो ध्वनि है यह परमात्मा का ज्ञान माना गया है। परमात्मा का ईश्वरीय ज्ञान हम इसे स्वीकार करते हैं और जितने भी प्राणी है संसार में, यह सब प्रीति और आनन्द के उत्सुक रहते हैं। आनन्द के लिये ही, आनन्द के पिपासी रहते हैं और जब वेद ध्वनि को मानव ध्वनित करने लगता है, तो बेटा! कौन अभागा प्राणी है जो अपने माता, पिता की प्रशंसा नहीं चाहता। यह जो वेद है, यह परमपिता परमात्मा के गुणों का पुंज है और प्रत्येक प्राणी उस गान को उस अहिंसा को अपने में पान करना चाहता है। सिंहराज जैसे ध्वनि को पान कर रहा था, माता अनुसूइया और अत्रि के विचारों को वह श्रवण कर रहा था।

तो मुनिवरो! देखो, वह अपने में जैसे मौन हुए तो सिंहराज ने भी अपने द्वितीय मार्ग को अपनाया। तो परिणाम क्या है मुनिवरो! देखो, वैदिक ऋषियों ने एक ही अपना मन्तव्य बनाया है कि मन, कर्म, वचन से मानव को हिंसा नहीं करनी चाहिए। क्योंकि **हिंसां ब्रह्म वाचाः** राजा के राष्ट्र में भी हिंसा नहीं होनी चाहिए।

भगवान मनु एवं मछली प्रकरण

मुनिवरो! देखो, मुझे स्मरण आता रहता है कि जिस काल में देखो, राष्ट्रीयता की कोई प्रतीति नहीं थी, तो भगवान् मनु ने सबसे प्रथम राष्ट्र का निर्माण किया था और राष्ट्र का निर्माण, उनके जीवन में एक आदर्श, एक महानता की कृति है। भगवान् मनु नित्यप्रति स्नान करने के लिये समुद्र तट पर जाते थे। एक समय जब वह संध्या में अर्पित होने लगे और उन्होंने अपने कमण्डल के जल से नृत किया तो उसमें एक मछली आ गयी। जब एक मछली आ गयी तो वहाँ भगवान् मनु **'अत्र हि वाचप्रहे'** जल को देखो, समुद्र में अर्पित करना चाहते थे। वह मछली अपने विचार व्यक्त करती है। भगवान् मनु से कहती है–हे भगवन्! मैं तो आपकी शरण में आयी हूँ, समुद्र में मैं सूक्ष्म मछली हूँ, मेरे से जो प्रबल मछली है वह मुझे आहार कर जायेगी। हे प्रभु! मैं आपकी शरण में आयी हूँ, आप मेरी रक्षा करो।

मुनिवरो! देखो, भगवान् मनु ने उसकी वेदना को स्वीकार कर लिया क्योंकि जब प्राणी अपने में अन्वेषण करता है, विचार करता है तो प्रत्येक प्राणी के शब्द और उसकी वेदना को वह अपने में स्वीकार कर लेता है। तो कमण्डल को ले करके वह अपनी स्थली पर आ गये। जब स्थली पर आ गये, तो वह मछली उस कमण्डल में पनपती रही। परन्तु वह जब पनपती रही तो समय आया कमण्डल से जब प्रबल हुई तो उसके लिये गड्ढा बनवाया। वह उसमें अर्पित कर दी, वह उसमें पनपने लगी। जब पनपने लगी तो मछली बड़ी प्रबल हो गयी तो एक समय भगवान् मनु से उस मछली ने कहा–हे प्रभु! कुछ समय के पश्चात् जल प्लावन आयेगा। भगवन्! जब समुद्रों में जल प्लावन आयेगा तो भगवन्! आप एक नौका का निर्माण करना, उसमें आप स्थिर रहना और जब जल प्लावन आयेगा तो मेरा जो नृत है वह हिमालय से मेरा समन्वय होगा और देखो, आपकी नौका हिमालय से जब नृत करने लगेगी तो मेरे सींघ और सम्भा से उस नौका को जकड़ लेना। मछली अपनी भविष्य वार्ता उच्चारण करते हुए मनु से कह रही है। उन्होंने कहा–देखो, वह जो समुद्र है इसमें एक अग्नि प्रदीप्त हो जाती है उसे बड़वानल नाम की अग्नि कहते हैं और वह जो अग्नि है इतना भयंकर रूप धारण कर लेती है कि जल प्लावन आ जाता है, प्राणीमात्र उसमें भस्म हो जाते हैं। मछली ने इतना वाक् उच्चारण करके कहा मैं अपने समुद्रों में गति कर रही हूँ।

तो मुनिवरो! देखो, मछली तो समुद्रों में चली गयी तो विचार विनिमय क्या हमारे वाक्यों का कि मुनिवरो! देखो, भगवान् मनु ने राष्ट्र का निर्माण किया और राष्ट्र के निर्माण में मछली से ले करके किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं होनी चाहिए। यदि राजा के राष्ट्र में प्राणियों की हिंसा होती है तो वह राजा अपनी प्रजा को कर्त्तव्यवादी नहीं बना सकता। यह भगवान् मनु ने निश्चय कर लिया, भगवान् मनु ने राष्ट्र का निर्माण किया था। सबसे प्रथम राष्ट्र का यदि कहीं निर्माण हुआ है तो वह भगवान् मनु ने किया है इस पृथ्वी के ऊपर। वहाँ प्रत्येक प्राणी की रक्षा के लिये मानव अपने कर्त्तव्य का पालन करता है क्योंकि परमपिता परमात्मा ने यह नाना योनियों का निर्माण किया है। कर्म स्थल को भोगने के लिये मानव देखो, इसकी रक्षा करने के लिये है, राष्ट्र का नियम, राष्ट्र का जो विधान है, राष्ट्र की जो परम्परा है उसका निर्माण केवल हिंसा के और अहिंसा के ऊपर हुआ करता है।

तो मुनिवरो! देखो, भगवान् मनु ने एक नौका का निर्माण किया और उसमें भगवान् मनु, महर्षि सोमकेतु, महर्षि स्वाति ऋषि महाराज, सोमवृत्तिका यह नाना ऋषि उस नौका में वास करते थे। मुझे कुछ ऐसा स्मरण आता रहा है, ऐसा कुछ प्रतीत हो रहा है कि वह समय पर जो मछली ने उच्चारण किया था उसी समय जल प्लावन आया और जब जल प्लावन आया तो नौका हिमालय की आभा को नृत करने लगी। तो वही मछली जो अपने वाक्यों को उच्चारण

कर रही थी, हिमालय से उसका समन्वय हुआ और नौका का भी हिमालय से समन्वय हुआ। तो तट का मिलान होने से उन्होंने नौका को उससे जकड़ लिया। ज्यों ज्यों जल प्लावन समाप्त हुआ, वह मछली अप्रतम् देखो, नौका से पृथक् हो गयी और नौका अपने आँगन में स्थिर होने लगी।

आत्मीयता की महत्ता

तो विचार क्या? मुनिवरो! **जो भी प्राणी जिस भी प्राणी की आत्मीयता से रक्षा करता है वह प्राणी उसकी रक्षा करता रहता है।** देखो, सर्पराज की भी तुम रक्षा करो तो सर्पराज तुम्हारी रक्षा करेगा। जब तुम अहिंसक बन जाओगे तो प्रत्येक प्राणी तुम से प्रीति और स्नेह करता हुआ वह प्रभु के राष्ट्र में नृत करने लगता है जहाँ आत्मीयता का बल प्राप्त करके मानव अपने में महान् बन जाता है।

तो मुनिवरो! देखो, यह विचार देते हुए आचार्यों ने कहा है–कि भगवान् मनु ने उस नौका पर नाना ऋषियों के द्वारा यह राष्ट्र का निर्माण हुआ और राष्ट्र का निर्माण क्यों होता है? यह वाक् मानव के द्वारा उत्पन्न होता है, कि राष्ट्र की आवश्यकता क्यों है? जब प्रजा में अशाँति, अकर्त्तव्यवादी प्राणी हो जाते हैं तो कर्त्तव्यवाद में लाने के लिये राष्ट्र का निर्माण होता है। अपना–अपना क्रियाकलाप विशुद्ध रूप से करने लगे, तो यहाँ राष्ट्र की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि राष्ट्र तो होता ही उस काल में है जब प्रत्येक मानव में कर्त्तव्य का अभाव हो जाता है। तो कर्त्तव्यवादी बनाने के लिये, इस समाज में एक राष्ट्रीयता के निर्माण की आवश्यकता होती है और राष्ट्र का निर्माण तब होता है जब मानव स्वार्थी बन जाता है जब स्वार्थ प्रजा में परिणत हो जाता है तो एक शासक बनता है और शासक बन करके वह राष्ट्र का निर्माण करता है और देखो, जहाँ तक हमारा यह प्रसङ्ग महर्षि भारद्वाज इत्यादि ऋषियों ने भी बहुत–सी घोषणाएँ की हैं। परन्तु देखो, जहाँ भगवान् मनु की वार्ता आती है जहाँ करोड़ों, अरबों वर्ष हो गये हैं भगवान् मनु को राष्ट्र की पद्धति का निर्माण किये, जब उन्होंने पद्धति का निर्माण किया तो उन्होंने यह किया कि राजा को ब्रह्मज्ञानी होना चाहिए। राजा जब ब्रह्मज्ञानी होगा तो प्रजा में कर्त्तव्यवाद आ सकेगा। माता तपस्विनी होनी चाहिए जिससे वह ऋषि मुनियों को जन्म दे सके।

द्वापर काल में महाराज अश्वपति की राष्ट्र व्यवस्था

मुनिवरो! देखो, राष्ट्र में सबसे प्रथम मुझे वह काल स्मरण है जब महाराजा अश्वपति के यहाँ विद्यालय में निर्वाचन होता रहता था। भगवान् मनु ने यह कहा कि समाज का निर्माण कहाँ होता है? विद्यालयों में होता है जहाँ उनके आचार्य होते हैं। आचार्य–जन जब वेद के पठन–पाठन करने वाले ब्रह्मत्व को प्राप्त करने वाले होते हैं तो वहाँ समाज का निर्माण होता है। समाज की पद्धतियों का निर्माण और राष्ट्र का निर्माण कहाँ होता है? यह ब्रह्मवेत्ताओं के समय में, राजा को यह ब्रह्मवेत्ता स्वीकार कर लें कि यह मानव स्वार्थी तो नहीं है, यह प्रजा के श्रृंगार को हनन तो नहीं करेगा, परन्तु देखो, इस प्रकार ब्रह्मवेत्ता, जिज्ञासु ऋषिवर राष्ट्र का निर्माण करते रहते हैं। राजा के राष्ट्र में जब महापुरूष आता है तो राजा प्रसन्न होता है और राष्ट्र स्थली को त्याग करके कहता है आइये, भगवन्! पधारिये, विराजिये। राजा अपनी राष्ट्रीय स्थली को त्याग देते हैं।

बेटा! मुझे स्मरण आता रहता है, एक समय महर्षि भृंगी महाराज महर्षि प्रजापति के द्वार पर पहुँचे, तो राजा ने अपनी स्थली को त्याग करके कहा–आईये, भगवन्! ऋषिवर पधारिये। तो महर्षि भृंगी जी विराजमान हो गये। उन्होंने कहा–प्रभु! क्या पान करेंगे? उन्होंने कहा–हे राजन्! मेरा यह नियम है कि मैं राष्ट्र के, राजा के गृह का कोई पदार्थ पान नहीं करता हूँ। उन्होंने कहा–प्रभु आप क्यों नहीं करते हैं? उन्होंने कहा–राष्ट्र का जो अन्न होता है वह रजोगुण और तमोगुण से सना हुआ होता है, इसीलिये मैं उसको पान नहीं करता। महर्षि भृंगी से महाराजा अश्वपति ने कहा–हे ऋषि! मैं और मेरी पत्नी दोनों हम कृषि करते रहते हैं, पृथ्वी में अन्न उत्पन्न करते हैं, माता वसुन्धरा के गर्भ में, और गर्भ से अन्न की उत्पत्ति करके हम पान करते हैं और राष्ट्र के क्रिया–कलाप करते रहते हैं इससे राष्ट्र पवित्र बन जाये। महात्मा भृंगी ने कहा–तो राजन्! मुझे यह कैसे प्रतीत हो कि तुम उद्यम कला कौशल करते हो? अन्न में, कृषि उत्पन्न करके उद्यम करके अन्न को प्रतिभा में लाते हो, यह मैं कैसे जानूँ। मुनिवरो! देखो, उन्होंने कहा–आइये, भगवन्! तो वह वहाँ जहाँ वह पृथ्वी में, वसुन्धरा के गर्भ से नाना प्रकार के अन्न को उत्पन्न करते थे, उसको पान करते थे उनकी बुद्धि मानों तीक्ष्ण और विचारणीय बन, जिज्ञासु में रत रहती थी, वह दिखायी। उस समय महात्मा भृंगी ने कहा–प्रभु! मैं अब तुम्हारे गृह का अन्न पान कर सकता हूँ। जब ऋषिजन इस प्रकार के अन्न को पान करते थे। तो वह योगाभ्यासी, बुद्धिजीवी प्राणी प्रजा में और राजा के राष्ट्र में कर्त्तव्य का पालन कर सके। आज मैं बहुत दूरी नहीं जाना चाहता हूँ। विचार विनिमय क्या है? मैं राष्ट्रीय पद्धति पर चला गया।

अहिंसा से आध्यात्मिक बल की वृद्धि

तो मुनिवरो! देखो, उच्चारण कर रहे थे कि ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा की चर्चा हो रही थी। ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा ने अपने में यह निश्चय किया था कि जितने भी हिंसक प्राणी हैं हम उनसे प्रीति करें, हम उनसे स्नेह करेंगे तो वह हमारे से स्नेह करेगा। उसी काल में हमारा हृदय पवित्र बन सकता है। हमारा मानसिक बल ऊँचा बन सकता है, जब हम आत्मीयता को प्राप्त कर सकते हैं और परम पिता परमात्मा का जो आध्यात्मिक विज्ञान है, उस विज्ञान को हम उसी काल में प्राप्त हो सकते हैं जब कि हम मन, कर्म, वचन, से हिंसा न करें। महात्मा भृंगी ऋषि **'अब्रहा महात्मा ब्रह्माः व्रते देवो ब्रह्मातेः'** अथर्वा ने अपने में निश्चय किया और देखो, अंगिरस मुनि क्योंकि देखो, वह वेद के अंगों का रस पान करते थे। इसीलिये उनको अंगिरस कहते थे। अथर्वा इसीलिये कहते हैं क्योंकि वह अथर्वा के, अपने को ऊँचा बनाते रहते थे। प्रत्येक **'अथर्वः वेदां भविते ब्रह्माः'** वे उसका पान करते रहते थे। और उस अथर्व का पान करते हुए ज्ञान और विज्ञान की उड़ान उड़ते रहते थे। इसलिये वह अथर्वा बृहि कहलाये जाते थे। अंगिरस मुनि महाराज और देखो, ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा प्रातःकालीन आश्रम में याग करते थे और याग करके जो भी विशुद्ध रूप से आहुति देते थे उसमें जो तरंगे उत्पन्न होती थी उन तरंगों को अपने में लाते हुए, उनका चिन्तन करते रहते थे कि जो हमने दिया है अग्नि की धाराओं में जो हमारा शब्द बन करके वह द्यौ–लोक को जा रहा है अथवा नहीं। क्योंकि वेद में एक मन्त्र आया है।

स्वाहा शब्द की महत्ता

मैंने कई काल में उसकी विवेचना की है **'अप्रं ब्रह्म हिरण्या अप्रतः देवो ब्रह्म वाचप्रहि लोकाम्'** वेद कहता है कि जब मानव स्वाहा उच्चारण करता है जब वह हृदय से मन, कर्म, वचन से उसका हृदय वहीं रहता है, तो जब वह स्वाहा देता है तो अग्नि की तरङ्गों पर जो शब्द है वह उसका आकार बन करके द्यौ–लोक में प्रवेश कर जाता है। वह जो द्यौ लोक है, जहाँ से सूर्य ऊर्जा लेता है, जहाँ से चन्द्रमा अमृत लेता है, जहाँ से अग्नि का पुंज बन करके एक प्रकाश में रत हो जाता है। तो वह जो महान द्यौ–लोक है, जहाँ हमारा शब्द उसमें लय हो जाता है वह द्यौ लोक में प्रवेश कर जाता है और समय–समय पर वही शब्द मुनिवरो द्यौ–लोक से आ करके देखो, मानव के क्रियाकलाप में वह परिणत हो जाता है। कैसा मेरे प्यारे प्रभु का यह ब्रह्माण्ड है कैसी अनुपम रचना है, इसके ऊपर मानव को सदैव विचार विनिमय करना चाहिए। **अरे मानव! इस ब्रह्माण्ड को तू जैसा देना चाहता है वैसा ही तुझे प्राप्त होगा।** यदि तू देवत्व को देना चाहता है, द्यौ में प्रवेश करना चाहता है, तो द्यौ तुझे प्राप्त होगा। यदि तुम मानव वृत्तियों में रहना चाहते हो तो वही तुझे प्राप्त होगा, समय–समय पर वही संस्कार बन करके तुम्हारे अन्तःकरण में एक प्रादुर्भाव हो करके तुम्हारा जीवन एक महान् बनता रहेगा।

याग में मनःस्थिति का प्रभाव

मुनिवरो! देखो, मुझे स्मरण आता रहता है एक समय अथर्वा और अंगिरस मुनि महाराज सायंकालीन याग कर रहे थे। जब वह याग कर रहे थे तो मुनिवरो! देखो, कहीं से भ्रमण करते हुए महर्षि सम्भूति ऋषि महाराज आ गये और सम्भूति ऋषि महाराज उनके याग में परिणत हो गये। जब याग में वह सम्मिलित हो गये तो तीन समिधा ले रहे थे, तो महर्षि अथर्वा ने कहा–कि हे भगवन्! यह तीन समिधा क्यों ले रहे हो? उन्होंने–कहा यह जो संसार है यह तीन में परिणत रहता है, तीन समिधा में ही जगत् परिणत है। भौतिक तीन ही गुण कहलाते हैं रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण और तीन ही पदार्थ हैं आत्मा, परमात्मा और प्रकृति। जैसा शास्त्र सिद्धान्त कहता है। ऋषि से जब यह वार्ता होने लगी तो उन्होंने कहा–कि तुम यह समिधा कहाँ अर्पित करना चाहते हो? उन्होंने कहा यह जो समिधा हैं यह अग्नि में विद्यमान है और यह अग्नि में ही परिणत होनी चाहिए। इनका स्वाहा होना चाहिए। यह जितना जगत् है यह स्वाहा में परिणत रहता है। जितना याग है यह स्वाहा में रहता है। मैं भी तीन समिधाओं को अग्नि में परिणत करना चाहता हूँ। जैसे प्रथम समिधा उन्होंने परिणत की तो अथर्वा और अंगिरस मुनि महाराज के यहाँ एक यन्त्र विद्यमान था। यन्त्र में वह जो याग करने वाला, समिधा को परिणत करने वाला है, उस समिधा का आकार और समिधा में जो भुजों में तरङ्गें हैं हृदय की जो तरंगे हैं। अग्नि पुंज में विद्यमान हो करके और उनका चित्र उस महान् यन्त्र में दृष्टिपात आ रहा था। जैसे ऋषि ने प्रथम समिधा को परिणत किया।

तो मुनिवरो! देखो, **'भृंगीरसतां ब्रह्मवाचा देवो अथर्व प्रह्मा'** अथर्वा ने कहा ऋषिवर! तुमने तो इससे पूर्व के जन्म में कोई हिंसा की है। तो ऋषि आश्चर्य चकित हो गया। उन्होंने कहा–प्रभु! यह आपने कैसे जाना? यह स्वाहा उच्चारण किया जा रहा है अन्तःकरण की जो तरंगें आ रही हैं यह तरंगें देखो, समिधा तुम्हें उच्चारण कर रही है। अग्नि पुंज में जब यह समिधा अग्नि की तरंगें का रूप धारण कर रही है, उन तरंगों में तुम्हारे तीन जन्मों के संस्कारों का भाव आ रहा है। तो ऋषि आश्चर्य चकित हो गये। ऋषि ने कहा–प्रभु! मैं तो यह जानता नहीं। हे भगवन्! प्रायः ऐसा होगा, मैं इसको नहीं जानता। तो जब ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा ने और अंगिरस मुनि ने यह कहा कि तुम इस हमारे याग में आहुति देने के योग्य नहीं हो। तो ऋषि मौन हो गया।

वेद–ध्वनि द्वारा अन्तःकरण की शुद्धि एवं यज्ञ की सूक्ष्मता

ऋषि ने कहा–प्रभु! इस विज्ञान को मैंने भी अध्ययन किया है, बहुत अध्ययन किया। है, उस अध्ययन में मेरा वृद्धपन आ गया है। परन्तु देखो, इस अध्ययन में मैं पूर्णता को प्राप्त नहीं हुआ। उन्होंने कहा–प्रभु! मुझे अपनी शरण में ले लीजिये। मेरे पुत्रो! अंगिरस मुनि और अथर्वा ने कहा–कि अभी तुम इस योग्य नहीं हो कि तुम हमारे इस याग में परिणत हो जाओ।

परमपिता की प्राप्ति

जब उन्होंने कहा–तो प्रभु! क्या किया जाए? उन्होंने कहा–तुम अन्तःकरण में वेद की ध्वनि को ध्वनित करने लगो। जब तुम्हारे अंग–अंग से वैदिक ध्वनि का प्रसार होने लगेगा, जब तुम मन्त्रों की माला बना लोगे। ओ३म रूपी सूत्र तुम्हारे प्रत्येक श्वास का मनका बन करके ब्रह्मचारी बन जाओगे, तो उस समय तुम्हें हम अपने याग में सम्मलित कर सकते हैं। तो याग का कितना सूक्ष्म रूप आज से लाखों वर्षों पूर्व क्या, करोड़ों वर्षों पूर्व ऋषि मुनि अपने में अध्ययन करते रहे। और अध्ययन करने से इसकी प्रतीति होती है कि हम प्रभु! के आँगन में आना चाहते हैं, तो प्रत्येक श्वास का मनका बना करके ओ३म् रूपी सूत्र में पिरो करके उसकी जो माला धारण कर लेता है वह मानव परमपिता परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। हमें सूत्र बनाना है और सूत्र बना करके उस सूत्र में मनकों को पिरोना है। महर्षि सोमकेतु महाराज से भी यह प्रसंग आया था।

तो आज मैं तुम्हें कोई विशेष विवेचना देने नहीं आया हूँ, विचार विनिमय क्या कि मैं याग की चर्चा कर रहा हूँ। कई समय से जैसे महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के यहाँ ब्रह्मचारियो ने कहा था भगवन्! ग्यारह होता ही क्यों होने चाहिये, नौ होता ही क्यों होने चाहिए? तो ऋषि ने ब्रह्मचारियों से कहा हे ब्रह्मचारियो! यह याग का बड़ा विशुद्ध पवित्र रूप है। देखो, इन तरंगों पर जो मानव खिलवाड़ करता रहता है, तुम्हें तो स्मरण होगा उद्यालक गोत्र के ऋषियों में भी प्रायः ऐसा होता रहा है। उन्होंने अपने पिता, महापिताओं के दर्शन किये हैं। अन्तरिक्ष द्यौ–लोक में, हृदय में जो यह नाना प्रकार के चित्र विद्यमान हैं इसी में तो प्रतिभा निहित रहती है। तो विचार विनिमय क्या है? आज का हमारा यह विचार क्या कह रहा है, कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए चले जायें।

राष्ट्रोन्नति के साधन

आज मैंने कुछ सूक्ष्म–सी राष्ट्र की चर्चाएँ की। राजा को अश्वमेध याग करना चाहिए। अश्व कहते हैं राजा को और मेध कहते हैं प्रजा को। प्रजा के सुख के लिए, प्रजा को अनुशासन में और कर्त्तव्यवाद में लाने के लिये राजा को अश्वमेध याग करने चाहिए। राजा जब विशेषज्ञ हो जाये तो उन्हें वाजपेयी याग, अग्निष्टोम याग करना चाहिए, अजामेध याग करना चाहिए। क्योंकि अजा प्रकृति को कहते हैं, जब अजामेध याग राजा के राष्ट्र में होते हैं तो दैविक प्रकोप नहीं होते, वायुमण्डल अशुद्ध नहीं होता। तो यह राजा का कर्त्तव्य है। मैंने राष्ट्रीय चर्चाओं में यह कहा है कि राजा के राष्ट्र में हिंसा नहीं होनी चाहिए। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही जब किसी भी काल में राष्ट्र का निर्माण हुआ है। ऋषि मुनियों के द्वारा उनका निर्वाचन हुआ है तो राजाओं के यहाँ हिंसा नहीं होनी चाहिए और जब हिंसा होती है तो समाज कर्त्तव्य से विहीन हो जाता है।

विज्ञान का सदुपयोग

जैसा मुनिवरो! देखो, महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने यह कहा था कि यह जो विज्ञान, जितना भौतिकवाद है यदि इसमें उज्ज्वलता नहीं रहेगी, इसमें कर्त्तव्य नहीं रहेगा, तो यह विज्ञान राष्ट्र को निगल जायेगा। क्योंकि राष्ट्रीयता में प्रति प्रकोप रहता है, जिस समय ब्रह्मचारियों में, छात्रों में, विद्यालयों में, जहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इत्यादिओं का निर्माण होता है जब विज्ञान का दुरुपयोग राजा के राष्ट्र में हो जायेगा, तो छात्र का छात्रत्व समाप्त हो जायेगा। विज्ञान के दुरुपयोग होने से छात्रों का छात्रत्व समाप्त हो करके और ब्रह्मचर्य में दूषितपना आ जाता है और जिस भी काल में विद्यालय के बह्मचारियों में ब्रह्मचर्य का दूषितपन हो गया है, उसी काल में रक्त भरी क्रान्ति आएंगी। किसी काल में राजा रावण के राष्ट्र में विज्ञान का दुरुपयोग हुआ था, तो मुझे स्मरण है रक्तभरी क्रान्ति आ गयी थी। इसी प्रकार अनुसन्धान राजा रावण के पुत्र को तुमने दृष्टिपात किया होगा, उनके विधाता कुम्भकर्ण जिन्होंने 75 वर्षों तक निद्रा का पान नहीं किया था, वह निद्रा नहीं लेते थे। हिमालय की कन्दराओं में वह केवल अनुसन्धान करते थे, विज्ञान के ऊपर अनुसन्धान करते रहते थे। ऐसा यान उनके यहाँ था कि यान में विद्यमान हो करके बहत्तर–बहत्तर लोकों का भ्रमण करके वह यान पुनः पृथ्वी पर आ जाता था।

तो इस प्रकार का विज्ञान राजा रावण के राष्ट्र में था। परन्तु देखो, अब्रहे जब विज्ञान का दुरुपयोग हुआ तो विद्यालयों के ब्रह्मचारियों का ब्रह्मचर्य दूषित हुआ, छात्रों का देखो, ब्रह्मचर्य दूषित हो गया, कर्त्तव्य नहीं रहा, जब कर्त्तव्य नहीं रहा तो रक्तभरी क्रान्ति के अवशेष उत्पन्न हो जाते हैं। तो बेटा! देखो, राजा के राष्ट्र में जब हिंसक प्राणी होते हैं। ....शेष अनुपलब्ध।

28.11.1984

महाराजा जनक की आध्यात्मिक सभा

जीते रहो,

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भाँति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हे प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन–पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वेद वाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि प्रत्येक वेद मन्त्र उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान का वर्णन करता रहता है क्योंकि वे परमपिता परमात्मा ज्ञान और विज्ञानमयी सर्वत्र हैं। क्योंकि वह उसका आयतन माना गया है। इससे पूर्व काल में, हमने प्रगट करते हुए कहा था कि जितना भी ज्ञान और विज्ञान है। मानो वह उस परमपिता परमात्मा की महती मानी गयी है। क्योंकि विज्ञान उसका आयतन माना गया, ज्ञान उसका आयतन माना गया है। वे परमपिता परमात्मा संसार के ज्ञान और विज्ञान की प्रतिभा कहलाती हैं।

महानता

आओ, मेरे पुत्रो! मैं तुम्हें विशेष विवेचना तो देने नहीं आया हूँ केवल ये उद्‌गीत गाने के लिये आया हूँ कि वे परमपिता परमात्मा अनुपम माने गये है आज हम उस परमपिता परमात्मा की जो सृष्टि है, ये जो ज्ञान और विज्ञान से ओत–प्रोत होने वाला जगत है, इसको हम निहारते रहें, और निहारते–निहारते उस छोर पर चले जायें जहाँ हम अपनेपन को समाप्त कर दें। जब हमारापन समाप्त हो जाता है तो जानो कि हमारी इन्द्रियों की सीमा का, हमारी इन्द्रियाँ जो सीमा में रत रहने वाली थी, वो सीमा से रहित और वो जो प्रकृति का एक अन्तर्द्वन्द्व हमारे समीप था, वो समाप्त हो गया। मानो उसमें जो वेद की एक धारा का जन्म होता है वे जो विवेकमयी वृत्तियाँ उत्पन्न हो जाती है, वही मानव का वास्तव में जीवन है। वही वास्तव में प्राणी मात्र की एक महानता कहलाती है। जिस पर जाकर के मानव स्थिर हो जाता है और स्थिर होने के पश्चात् वह अपने प्रभु का मानो दिग्दर्शन करने के लिये तत्पर हो जाता है।

आओ, मेरे पुत्रो! आज का हमारा वेद मन्त्र, ये नाना प्रकार के उद्‌गीत, नाना प्रकार की उद्‌गमता का हमें प्रायः बोध करा रहा था और मानव अपने में जब प्रसन्न और वैदिकता की प्रतिभा में रत होता है तो उसका ज्ञान और विज्ञान, मानव के समीप आ करके बेटा! खिलवाड़ करने लगता है और मानव भी उसमें रत हो जाता है। आओ, मेरे पुत्रो! आज तुम्हें मैं ज्ञान और विज्ञान के क्षेत्रों में ले जाना नहीं चाहता। इससे पूर्वकाल में मेरे पुत्र महानन्द जी ने अपनी बहुत–सी विचार धाराएँ और अपना वक्तव्य देते हुए कहा था–कि यह संसार अज्ञानता की वेदी पर निहित हो रहा है। परन्तु ज्ञान के क्षेत्र में मानव को जाना चाहिए। ज्ञान किसे कहते है? परमपिता परमात्मा की यह जो महती है इसको हम अच्छी प्रकार जानते हुए और सागर की प्रतिभा में रत होते चले जाये क्योंकि परमपिता परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान अपने में अनूठा माना गया है। क्योंकि ब्रह्माण्ड की प्रतिभा में हम सदैव रत होते रहते हैं तो ब्रह्माण्ड में नाना प्रकार की तरंगें ओर नाना प्रकार की आभाएँ मानव के समीप आती रहती हैं जिसके ऊपर, मानो परमपिता परमात्मा अपने में और वह मानो जिज्ञासु अपनी प्रतिभा में रत हो जाता है।

आध्यात्मिक सभा

तो आओ, मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें विशेष विवेचनाओं में न ले जाता हुआ। आओ, तुम्हें मैं राजा जनक के यहाँ ले जाना चाहता हूँ। बेटा! राजा जनक के यहाँ, भिन्न–भिन्न प्रकार के यागों को चयन होता रहता था। उनके यहाँ प्रातःकालीन जैसे देवपूजा होती रहती, प्रायः ब्रह्मयाग भी होता रहता था। तो ब्रह्मयाग में अपने में परिणत होते हुए अपनी धाराओं को अपनाते हुए बेटा! राजा जनक और नाना ऋषिवर नाना प्रकार के मानो ब्रह्मज्ञान की विवेचनाएँ और ब्रह्मज्ञान में सदैव वो रत होते रहते थे।

सर्वोच्च ब्रह्मवेत्ता को एक सहस्र गऊएँ

तो राजा जनक के यहाँ बेटा! एक सभा हुई। उस सभा में नाना ऋषिवर विद्यमान हैं और नाना ऋषिवर अपने–अपने उद्‌गीत गाने के लिये ब्रह्म का निर्णय करने के लिये, ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करने के लिये, नाना ब्रह्मवेत्ता बेटा! उस सभा में विद्यमान हुए। मेरे प्यारे! राजा जनक ने अपनी एक स्थली पर विद्यमान हो कर ये घोषणा की। ये कहा, कि जो इस ब्रह्मं ब्रहे कि मैंने एक सहस्र गउओं के सिंगो पर स्वर्ण मथ दिया है। और जो तुमनें विशेष, ब्रह्मवेत्ता हो वह इन गऊओं को अपने आश्रम में ले जा सकता है।

तो बेटा! राजा जनक ने जब यह घोषणा की तो ऋषि मुनियों में नाना प्रकार की विचार धाराओं की उपलब्धियाँ होने लगीं। परन्तु एक दूसरा, एक दूसरे ज्ञान में अपने को पारायण स्वीकार करने लगा। कोई दूसरे को पारायण स्वीकार करने लगा। देखो, कई समय हो गये, रोज सभाएँ विद्यमान होतीं और अपनी स्थलियों में चली जातीं। तो बेटा! देखो, कुष्मब्रह्माः राजा जनक की सभा की वार्ताएँ, याज्ञवल्क्य मुनि के आश्रम में मानो ब्रह्मचारियों में जो अध्ययन करते रहते थे। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज को किसी ने कहा–कि हे प्रभु! राजा जनक के यहाँ तो ब्रह्मवेत्ता मानो उपस्थित होते और अपने आश्रम को गमन करते। राजा जनक के **'मानं बृहि व्रतम्'** राष्ट्र में इस प्रकार का ब्रह्मवेत्ता अपने में उद्‌गीत नहीं गा रहे हैं।

तो मुनिवरो! याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने ब्रह्मचारियों का एक समूह एकत्रित किया और ब्रह्मचारियों से कहा–हे ब्रह्मचारियो! यदि तुम्हारी आज्ञा हो तो मैं राजा जनक के यहाँ जा रहा हूँ और राजा जनक के यहाँ से एक सहस्र गऊओं का अगर तुम पालन कर सको तो उन गऊओं को लेकर के आश्रम में आता हूँ। ब्रह्मचारियों ने कहा–हे प्रभु! ये तो हमारा बड़ा सौभाग्य है। हम तो बड़े सौभाग्यशाली रहेंगे, जो गऊओं का पालन करेंगे। मेरे प्यारे! देखो, ब्रह्मचारी यज्ञदत्त, और रोहिणीकेतु दोनों ब्रह्मचारियों को लेकर के याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने अपने विद्यालय से प्रस्थान किया और भ्रमण करते हुए मेरे पुत्रो! राजा जनक के यहाँ पहुँचे। जो ऊँची स्थली मानो विद्यमान थी। एक ब्रह्मवेत्ता की स्थली मानो ऊँची थी।

महर्षि याज्ञवल्क्य से ब्राह्मणों का शास्त्रार्थ

महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज बेटा! उस स्थली पर विद्यमान हो गये और ब्रह्मचारियों को आज्ञा दी कि गऊओं को अपने आश्रम में गमन कराओ। मेरे प्यारे! ब्रह्मचारियों ने ऋषि के वाक्यों को पान करके, आचार्य की आज्ञा का पालन किया और ब्रह्मचारियों ने एक सहस्र गऊओं को वहाँ से गमन करया। तो बेटा! ब्राह्मणों के हृदय में, ब्रह्मवेत्ताओं के हृदय में एक अग्नि प्रदीप्त हो गयी, ये कहा–कि ये कैसा है जो अपने को ब्रह्मवेत्ता कह नहीं रहा, परन्तु अपने में स्वाभिमान कर रहा है। मेरे प्यारे! देखो, याज्ञवल्क्य मुनि महाराज से नाना प्रकार के प्रश्न और उत्तरों की एक झड़ी लगने लगी। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा–नहीं, तुम ही ब्रह्मवेत्ता हो और बारी–बारी मेरे से प्रश्न करो मैं तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देता जाऊँगा।

तो मुनिवरो! देखो, ब्रह्मवेत्ताओं में सबसे प्रथम महामन्त्री ने याज्ञवल्क्य मुनि महाराज से कुछ वार्ताएँ प्रगट कीं। उसमें उचित उन्होंने उत्तर दिया। परन्तु इतने में राजा जनक के जो पुरोहित थे। महाराज अश्वल उपस्थित हुए। और महाराज अश्वल ने कहा हे याज्ञवल्क्य! ये जो तुम गऊओं को ले जा रहे, क्यों ले जा रहे हो? यहाँ ये घोषणा हो गयी है कि जो अपने में ऊँचे से ऊँचा ब्रह्मवेत्ता है वह गऊओं को प्रस्थान करा सकता है। क्या, तुम हमारे प्रश्नों का उत्तर दोंगे? राजा जनक की सभा में याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा, हे भगवन्! मैं प्रश्न का उत्तर तो नहीं दूँगा, परन्तु जो तुम उच्चारण करोगे उसका मैं यथोचित मानो प्रयत्न करूँगा।

मेरे प्यारे! इतनी नम्रता से उन्होंने जब अपना उद्घोष किया तो महाराज अश्वल ने कहा—कि ये जो सभा विद्यमान है ये मृत्यु को विजय करने के लिये सभा उपस्थित हुई है। उन्होंने कहा—प्रियतम। परन्तु यजमान यह कैसे प्राप्त कर सकता है कि हमारी मृत्यु न हो। तो मेरे प्यारे! महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा हे महात्मन्! हे अश्वल! मृत्यु को विजय करने वाला जो यजमान याग कर रहा है वो ब्रह्मयागी बनना चाहता है। वो ब्रह्म का चिन्तन करना चाहता है। मानो देखो, जो ब्रह्म का चिन्तन करता है और अपने अन्तर्हृदय में यह स्वीकार करता है कि ये तो मेरा कर्तव्य है। मैं अपने सखा और पिता की सृष्टि के महत्त्व को अपने में धारण करना चाहता हूँ तो वह मृत्युंजयी बनने के एक मार्ग का पथिक बनने लगता है। उस मार्ग को वो मानो गतिशील होना प्रारम्भ हो जाता है तो इसी प्रकार ब्रह्मं ब्रहे कृतं ब्रह्मः इसी प्रकार हम सब विद्यमान हैं। यजमान को मृत्यु से उल्लांघना चाहते हैं।

तो मानो मृत्यु नहीं आनी चाहिए, ऐसा तुम्हारा मन्तव्य है। तो हमारा विचार यह है कि वास्तव में मृत्यु नहीं आनी चाहिए। आओ हम परस्पर विचार करेंगे।

ब्रह्म का ज्ञान

मेरे प्यारे! महात्मा अश्वल ने कहा—बहुत प्रिय, भगवन्! इस यजमान को मृत्यु से उल्लांघना है। मेरे प्यारे! देखो, महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि—बोले कि व्यष्टि से समष्टि में प्रवेश करना ही मानो अन्धकार से प्रकाश में जाना है। ये व्यष्टि और समष्टि में तुम्हें प्रवेश होना है। मानो व्यष्टि को त्यागना है और समष्टि में अपने को परिणत कर देना है। तो वही मानो ब्रह्म का ज्ञान होना है। जैसे हमारी पाँचो ज्ञानेन्द्रियाँ हैं इन ज्ञानेन्द्रियों को ये व्यष्टि में रहती है तो इनका नाम रूप रहता है। जैसे मानो व्यष्टि में नेत्र बने रहते हैं। यदि व्यष्टि में जाओगे तो ये नेत्र हमारा अग्नि का स्वरूप धारण करेंगे मानो जैसे श्रोत्र हैं ये जब तक व्यष्टि में रहते हैं तब तक श्रोत्र कहलाते हैं और जब ये मानो समष्टि में जाते हैं तो ये ही श्रोत्र मानो दिशाएँ बन जाते है। मानो देखो, जैसे हमारे घ्राण इन्द्रियाँ है, जब तक ये व्यष्टि में है तब तक ये घ्राण हैं और जब ये समष्टि में चली जाती है तो ये ही मानो पृथ्वी के स्वरूप को धारण कर लेती है मेरे प्यारे! जैसे वाणी है। वाणी समष्टि में, वाणी है और व्यष्टि में ये ही अग्नि बन जाती है। जैसे मानो देखो, हमारी ये त्वचा है। मेरे प्यारे! समष्टि में प्रेम है तो व्यष्टि में ये ही चन्द्रमा बन जाती है। मेरे प्यारे! देखो ये समष्टि और व्यष्टि में और व्यष्टि से समष्टि में यजमान को पहुँचाना है। मानो व्यष्टि से समष्टि में और समष्टि ही देखो, मेरे पुत्रो! ब्रह्मज्ञान का द्योतक है, वही ब्रह्मज्ञान को छुने लगता है।

ब्रह्म का उद्घोष

मेरे पुत्रो! देखो, इस प्रकार याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने प्रकाश में जाने के लिये, मृत्यु से विजयी होने के लिये, ऋषि ने जब ये उद्घोष किया तो मुनिवरो! देखो, ऋषि मुनि मुग्ध हो गये। आनन्दवत् हो गये कि ऋषि का वाक् बड़ा यथार्थ है ये वास्तव में ब्रह्मवेत्ता हैं। ब्रह्मवेत्ताओं की भाषा में, ब्रह्म की भाषा में बह्म का उद्घोष कर रहा है। तो मेरे प्यारे देखो! महात्मा अश्वल मौन हो गए महात्मा अश्वल ने कहा—कि प्रभु! ये यजमान जो व्यष्टि से समष्टि में प्रवेश हो गया है। ये यजमान मानो देखो, मृत्यु से पार होना चाहता है और मृत्यु से पार होकर के यज्ञशाला में यह हूत करना चाहता है। आहुति देना चाहता है।

तो मेरे पुत्रो! देखो, महात्मा अश्वल अब्रहे के प्रश्नों को उत्तर देने के लिये जब ऋषिवर तत्पर हुए तो ऋषि ने कहा कि यजमान मानो देखो, तीन आहुति देता है। पुनरुक्ति आज्ञाहुति, रोहिणी प्रणाहुति। मानो देखो, ये तीन आहुति दे करके मेरे पुत्रो! देखो, अपने पापों को दग्ध करना चाहता है। आहुति का अभिप्राय यह है कि अपने में मानो देखो, स्वाहा कह करके अपने उद्गीत गाता हुआ वो अन्तरिक्ष में गमन करना चाहता है। द्यौ—लोक में प्रवेश करना चाहता है। तो मानो वही तो उद्गीत कहलाना पूर्ण पुनरूक्तियाँ हैं, वृत्तियाँ हैं, सम्भूति हैं। मानो देखो, वृत्तियों में रत हो करके आज्ञाहुति देना चाहता है। जब वो मानो यजमान प्रकाश में जाने के लिये उद्गीत गाने के लिये तत्पर होता है। तो मानो देखो, वो आज्ञाहुति देता है। वह पुनरुक्तियों में परिणत हो जाता है। मेरे प्यारे! एक आहुति सतोगुणी है तो एक रजोगुणी है। एक मानो उपराम होने की आहुति है। मुनिवरो! देखो आज्ञाहुति पुनरुक्ति जो आहुति है। वो राष्ट्रीय आभा में रत करने वाली हैं। ज्ञान युक्त और प्रकाश में ले जाने वाली हैं। मेरे प्यारे! अपना क्रियाकर्म, क्रिया—कलाप पवित्र होना चाहिए।

महाराजा अश्वल ने संक्षेप में उन वाक्यों को स्वीकार करके और वह अपनी स्थली पर विद्यमान हो गया। जब वे अपनी स्थली पर विद्यमान हो गये तो मेरे प्यारे! ब्राह्मणों में, ब्रह्मवेत्ताओं में बेटा! साहस नहीं बना, कि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज से पुनः प्रश्न किया जाये।

महर्षि याज्ञवल्क्य एवं चाक्राणी गार्गी सम्वाद

तो मेरे पुत्रो! जब भोज का समय हो गया तो मुनिवरो! देखो, चाक्राणी गार्गी उपस्थित हुई, चाक्रणी गार्गी ने ब्रह्मवेत्ताओं से कहा—हे ब्रह्मवेत्ताओं! यदि तुम्हारी आज्ञा हो, तो मैं इस ब्रह्मवेत्ता याज्ञवल्क्य मुनि महाराज से केवल दो प्रश्न करना चाहती हूँ। ब्रह्मवेत्ताओं ने कहा, अवश्य प्रश्न कीजिये। मेरे प्यारे! देखो, चाक्राणी उपस्थित हो करके मन ही मन में नमस्कार करते हुए बोली—हे प्रभु! मैं आपसे कुछ प्रश्न कर सकती हूँ। याज्ञवल्क्य मुनि बोले—देवी! जो तुम्हारी इच्छा हो, मैं यथोचित तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दे सकूँगा और नहीं दे सकूँगा तो मौन हो जाऊँगा और क्षमा पान कर लूँगा। मेरे प्यारे! ये नम्र विचार श्रवण करते हुए गार्गी का मस्तिष्क उसी काल में कुछ शांत होने लगा था। ऋषि, मुनि अपने में आश्चर्य चकित होने लगे।

महर्षि अर्धभाग के प्रश्न

इतने में अर्धभाग ने ये कहा ऋषिवर! तुम जो ये उच्चारण कर रहे हो, कि मैं प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सका तो मैं मौन हो जाऊँगा, तो तुम ब्रह्मवेत्ता के आसन के योग्य नहीं हो। मेरे प्यारे! वह याज्ञवल्क्य मुनि बोले कि मैं योग्य कब उच्चारण कर रहा हूँ। मेरी तो यह नम्र प्रार्थना है कि मेरा कोई स्वार्थ नहीं था। मेरे आश्रम में एक विद्यालय, है और विद्यालय में ब्रह्मचारी अध्ययन करते हैं। गऊओं की आवश्यकता है। राजा जनक के यहाँ से गऊ मुझे प्राप्त हो गयी तो मैं उन्हें ले गया हूँ। तुम बारी—बारी मेरे से प्रश्न करो—मैं यथोचित उनका उत्तर दूँगा अर्धभाग मेरे प्यारे! उत्तर पाकर के अपने आसन पर विद्यमान हो गये।

मानवीय महत्त्व

चाक्राणी गार्गी ने कहा—प्रभु! मैं ये जानना चाहती हूँ कि भगवन्! आपने जो बिना ब्रह्मवेत्ताओं की आज्ञाओं के और यजमान राजा जनक की बिना आज्ञा तुमने जो ये गऊएँ अपने आश्रम को गमन करायी हैं इसके मूल को हम न जान सके हैं। आपने ऐसा क्यों किया? उन्होंने कहा हे देवी! तुम्हे ये प्रतीत है, हमने मानो इसलिये ये किया अब्रहे कि मेरा जो आश्रम है, वहाँ गऊओं की आवश्यकता का अनुभव कर रहा था। ब्रह्मचारियों का उद्गीत, उनका हृदय, उनके मनोनीत शारीरिक बल उन्हें प्राप्त हों, बौद्धिक बल उन्हें प्राप्त हो, तो मेरी उत्कृष्ट इच्छा थी कि गऊ कहीं से प्राप्त हो जायें। तो मैंने राजा जनक के राष्ट्र की ये घोषणा स्वीकार की है। मैंने श्रवण किया था कि राजा जनक के यहाँ एक सहस्र गऊएँ मानो देखो, स्वर्ण से मथी हुई हैं और वह ब्रह्मवेत्ता के लिये अर्पित हैं। इतने में देखो, ब्रह्मवेत्ता का अर्थ मैंने ये स्वीकार किया कि जो ब्रह्मविद्या मेरे यहाँ प्राप्त की जा रही है। ब्रह्मचारी जो ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे हैं, उनको गऊओं की आवश्यकता है। वे परिश्रम करें, उसी में रत रहें और गऊओं की सेवा करना ये हमारे लिये बड़ा मानवीय एक महत्व माना गया है। इसीलिये मेरा तो यह मूल कारण है।

मेरे प्यारे! याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने जब ये उत्तर दिया तो चाक्राणी गार्गी बोली कि प्रभु! आप मेरे प्रश्नों का उत्तर देंगे? उन्होंने कहा–देवी! जो तुम उच्चारण करोगी मैं उसका अवश्य प्रयत्नशील हूँ। उन्होंने कहा–तो प्रभु! आप मुझे ये निर्णय दीजिये कि ये जो संसार मुझे दृष्टिपात आ रहा है। ये मानो देखो, चार प्रकार की सृष्टि मुझे दृष्टिपात आती है। इस ब्रह्माड की मैंने जिस भी काल में कल्पना की है और कल्पना करते हुए मुझे चार प्रकार की सृष्टि उद्‌बुद्ध होती दृष्टिपात आती है। वो चार प्रकार की सृष्टि कौन–सी है? जब परमपिता परमात्मा ने इस संसार का सृजन किया अथवा इस सृष्टि का निर्माण किया तो सबसे प्रथम उन्होंने स्थावर सृष्टि को स्थिर किया। स्थावर के पश्चात अण्डज, अण्डज के पश्चात जङ्गम् जङ्गम के पश्चात उद्‌भिज कहलाती है। ये चार प्रकार की सृष्टि, मैं इस पृथ्वी मण्डल पर भी प्रायः दृष्टिपात करती हूँ और जब मैं किसी और लोक–लोकान्तरों की भी कल्पना करती हूँ तो वहाँ भी मुझे ये चारों प्रकार की सृष्टि उद्‌बुद्ध होती हुई दृष्टिपात आती है। जब मैं समुद्रों के गर्भ में प्रवेश करती हूँ तो वहाँ भी चारों प्रकार की सृष्टि निहित है। मानो देखो, जब मैं सौर मण्डलों में रमण करने लगती हूँ, अपने अनुभव से, समाधि पिपाद में प्रवेश होकर के जब मैं लोक–लोकान्तरों की कल्पना करने लगती हूँ तो वहाँ भी प्रायः मुझे चारों प्रकार की सृष्टि दृष्टिपात आती है। तो प्रभु! ये आप स्वीकार करते हैं, उन्होंने कहा–प्रियतम्!

सृष्टियों की आयु

मानो जब आप दृष्टिपात करते हैं। तो मैं यह जानना चाहती हूँ कि भगवन्! ये चारों प्रकार की जो सृष्टि हैं। जो मानो स्थावर सृष्टि है, स्थिर वाली इस सृष्टि में भिन्न–भिन्न प्रकार के तत्त्व है। भिन्न–भिन्न प्रकार को जातीयतव मुझे प्राप्त होता है देखो, अन्न से लेकर के वृक्ष, ऊर्ध्वा में, विशाल आयु वाले वृक्ष, मुझे दृष्टिपात आते हैं। जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा अध्ययन करती थी तो एक समय वृक्ष विज्ञान के ऊपर मानो अध्यापन हो रहा था। तो हमारे पूज्यपाद गुरुदेव ने एक–एक वृक्ष की आयु का जो हमें प्रमाण दिया, एक–एक हजारों वर्षों में क्या मानो शरदः शतं, शरदशतं, शरदशतं एक–एक वृक्ष की आयु, पचास–पचास हजार वर्ष की आयु के वृक्ष का उन्होंने वर्णन किया है। मानो देखो, इसी प्रकार ऐसी जो अण्डज सृष्टि है, अण्डज सृष्टि में एक–एक योनि ऐसी है मानो देखो, पूज्यपाद गुरुदेव जो अण्डज सृष्टि का वर्णन कराने लगे, एक समय वर्णन कराते हुए बहुत–सी योनियाँ उन्होंने निर्धारित की हैं। जिन योनियों का दो या तीन–तीन हजार वर्षों का, दस–दस हजार वर्षों का मानो लाखों–लाखों वर्ष की योनियों का प्रमाण प्राप्त होता है।

तो प्रभु! मैं जानना चाहती हूँ कैसा विचित्र एक अनुपम जगत है मानो स्थावर सृष्टि में भी कितनी आयु के वृक्ष हैं, अण्डज सृष्टि में भी कितनी आयु का मानो देखो, योनियाँ हैं। कुछ जातियाँ इस प्रकार की हैं। मानो देखो, इसी प्रकार देखो, जङ्गम् सृष्टि है। जङ्गम् सृष्टि में मानव भी आता है। पशु भी आता है तो जो मानव जाति अपने में पूर्ण रुपेण है। मानो देखो, इन में ऋषि, मुनि जब साधना में परिणत हो जाते हैं, साधना में रत हो जाते हैं। तो मानो एक–एक ऋषि की आयु का प्रमाण हमें कई–कई हजार वर्षों का प्राप्त होता है। परन्तु देखो, उसके पश्चात् प्राणान्त मानो वो शरीर को त्याग देते है। आत्मवत् अपने में पृथक् हो जाते है। तो क्या हे प्रभु! इसी प्रकार उद्‌भिज सृष्टि ऐसी है क्यों पुनरुक्ति मर्जन है। पुनरुक्ति उसका जीवन है। कुछ योनियाँ उन में भी इस प्रकार की हैं जो विशाल हैं।

चारों सृष्टियों की प्रतिष्ठा

परन्तु मैं यह जानना चाहती हूँ भगवन्! मेरा जो प्रश्न है कि ये जो सृष्टि मुझे दृष्टिपात आती है। ये चारों प्रकार का जो सृष्टि विभाग मुझे दृष्टिपात आ रहा है इनकी ये प्रतिष्ठा को जानना चाहती हूँ, कि ये किसमें प्रतिष्ठित होता है? किसमें ओत–प्रोत हो जाता है? ये किसमें निष्ठित हो जाता है? मानो देखो, इसका कोई न कोई सूत्र है, मैं उस सूत्र को जानना चाहती हूँ। जहाँ ये सूत्र सिमट करके अपनी स्थलियों में प्रवेश कर जाता है। हे भगवन्! में उस सिमटने वाले जगत् को जानना चाहती हूँ।

पैतीस हजार वर्ष आयु वाला वृक्ष

मेरे प्यारे! जब ऋषि ने चाक्राणी के प्रश्नों को स्वीकार किया, तो याज्ञवल्क्य मुनि महाराज बोले हे चाक्राणि! वाक् तो तुम्हारा बड़ा प्रिय है और मुझे बड़ा प्रिय लग रहा है तुम्हारी व्याख्या मुझे बहुत प्रिय लग रही है परन्तु देखो, इनमें बहुत–सी योनियाँ जो तुमने वर्णन करायी हैं। स्थावर सृष्टि में बहुत से वृक्ष है, जो हिमालयों में भी प्राप्त होते हैं। बहुत से वृक्ष हैं जो समुद्रों के आँगन में भी गमन करते रहते हैं। समुद्रों में एक वृक्ष होता है जिस वृक्ष का नाम रोहिणी वाचू वृक्ष कहलाता है। उसकी आयु मानो देखो, 35000 वर्षों तक आयु बन जाता है। वो समुद्रों में जलीय प्रधानता के रूपों में गमन करता है। एक रोहिणी वृक्ष कहलाता है। जो रोहिणी वृक्ष मानो देखो, वटवृक्ष से उसकी मानो सीमान्तर होती है। उस वृक्ष का आयु भी पचास वर्ष का बन जाता है। परन्तु इसी प्रकार वट वृक्ष का आयु बहुत होता है।

मेरे पुत्रो! देखो, ऋषि ने वर्णन कराया कि इस प्रकार के मानो देखो, वृक्ष योनियों में एक मानो जाति होती है वृक्ष एक सर्पों में जाति होती है। जिसको नाघावृत जाति कहते हैं। उस जाति का आयु बहुत दीर्घ बन जाता है। एक–एक सर्पराज का आयु लगभग मानो पचास–पचास सौ वर्षों तक की आयु का देखो, सर्प बन जाता है। सर्प जितनी आयु किसी भी मानो देखो, प्राणी की नहीं हो पाती। मेरे प्यारे! देखो, सर्पराज जिसको अजगेत मानो देखो, सर्प कहते हैं। वह देखो, जब भयङ्कर वनों में होता है तो वह ऐसी–स्थलियों में होता है, जहाँ मानव, तो बहुत ही सूक्ष्मतम पहुँच पाता है। परन्तु वह जब किसी काल में, वो गम्भीरता से या क्रोध में या अपने आवेश में आकर के श्वास लेता है तो मानो उसके निकटतम एक–एक देखो, दस–दस वृत्तियाँ दूरी तक का मानो उसके श्वास के साथ, प्राणी उसके शरीर में ही प्रवेश कर जाता है। ऐसे–ऐसे सर्प प्रभु की सृष्टि में निहित रहते है।

महर्षि श्वेतकेतु की आयु

तो बेटा! मैं कहाँ चला गया हूँ। वाक्य ये उच्चारण कर रहा कि देखो, इसी प्रकार मानो जाति में, मानवीय समाज में इस प्रकार के ऋषि मुनि हुए हैं जिनका आयु बड़ा दीर्घ बना है। मैंने अब तक बहुत समय हो गया पुत्रो! सृष्टि को निहारते हुए, ऋषि कहते हैं कि हे चाक्राणी! मैंने एक ऋषि को अब तक ऊर्ध्वा में दृष्टिपात किया है। जिन ऋषि का नाम मानो श्वेतकेतु और वैशम्पायन ऋषि कहते हैं। देखो, श्वेतकेतु ऋषि का जो आयु है वो मैंने लगभग साढ़े चार हजार क्या देखो, पाँच हजार वर्षों तक का मैने अब तक दृष्टिपात किया है। और इसी प्रकार मानो देखो, वैशम्पायन का आयु भी साढ़े तीन हजार वर्षों का हुआ और देखो, च्यवन ऋषि का भी इसी प्रकार का हुआ है। परन्तु देखो, वे बड़े साधक, प्राणायाम करने वाले, साधना में, समाधि में परिणत हो जाते थे। तो देखो, जितना समाधि–पिपाद्, मानव का ऊँचा होता है, मानव की आयु उतनी ही दीर्घ बन जाती है। उनका आयु विचित्र बन जाता है। आयु मुनिवरो! देखो! प्राण के साथ, ब्रह्मचर्य का जो बलिष्ठ होना है वायु और श्वास की प्रतिक्रियाओं के साथ होता है तो इसी प्रकार वो हमें मान्य होता है। वैदिक साहित्य में उसकी प्रतिभा हमें प्राप्त होती है।

परन्तु आज मैं देवी! विशेष विवेचना में नहीं जाना चाहता हूँ देखो, जो उद्‌भिज सृष्टि है जिसको हम स्वेदन भी कहते हैं। वह जो उद्‌भिज सृष्टि है मानो जल के संयोग से जिसका जन्म होता है। एक समुद्रों में योनि प्राप्त होता है जिस योनि का नामोव्रेताः श्वेतकानन मानो देखो एक योनि कहलाती है। जो समुद्रों की गहरी से गहरी, गम्भीर गुफा में मानो प्रायः उसे पान किया जाता है। उसका जो आयु है वो मानो दस–दस हजार वर्षों का आयु बन जाता है। इस प्रकार के प्राणी समुद्रों की गहराई में रहते हैं। समुद्रों की गम्भीर मुद्रा में मुद्रित रहते हैं। तो हे देवी! अब तुम जानना क्या चाहती हो?

चाक्राणी बोली प्रभु! मैं जानना यह चाहती हूँ कि ये जो सर्वत्र ब्रह्माण्ड मुझे दृष्टिपात आ रहा है, ये जो चारों प्रकार का सृष्टिवाद मुझे दृष्टिपात आ रहा है और एक–एक योनि में एक–एक ब्रह्माण्ड का मुझे चित्रण दृष्टिपात आ रहा है, ये जो ब्रह्माण्ड अपनी आभा में गतिशील हो रहा है, भगवन! मैं ये जानना चाहती हूँ कि हे प्रभु! ये कहाँ प्रतिष्ठित हो जाता है। मैं इसकी प्रतिष्ठा को जानना चाहती हूँ।

पृथ्वी में प्रतिष्ठित सृष्टियाँ

तो ऋषि ने वर्णन करते हुए कहा कि देवी! ये जो चारों प्रकार की सृष्टि है, इसकी जो प्रतिष्ठा है, ये जो ओत–प्रोत होती है, ये देखो, इस पृथ्वी में ओत–प्रोत हो जाती है। पृथ्वी अपनी स्थलियों में, इसे अपने में ग्रहण कर लेती है। मानो ये ही चारों प्रकार की सृष्टि का सूत्र कहलाता है। यह पृथ्वी में प्रतिष्ठित हो जाती है। उसी में प्रतिष्ठा को ग्रहण कर लेती है। मानो ये ही अपने में इस संसार को समेट लेती है। अपने में मानो देखो, धारण कर लेती है। जैसे माता मानो एक बिन्दु है, उस बिन्दु के गर्भ में बेटा! देखो सर्वत्र मानव विद्यमान है। माता के गर्भ में एक बिन्दु है उस बिन्दु में शिशु है शिशु के गर्भ में देखो, मानव के सर्वांग शरीर विद्यमान है। मुनिवरो! देखो, वह माता अपने में उसे धारण कर रही है। इसी प्रकार ये जो पृथ्वी है, यह सर्वत्र मुनिवरो! देखो, इसको अपने में प्रतिष्ठित कर लेती है, अपने में ओत–प्रोत कर लेती है और जब अपने में ओत–प्रोत कर लेती है तो मानो ये अङ्कुर रूपो में, सूक्ष्म रूपों में इसे मानो अपने गुरुत्व में इसे धारण करती हुई, इसे अपने में समेट लेती है। जैसे वट वृक्ष है और वो वट वृक्ष एक बीज में मानो वो विद्यमान रहता है और वो बीज जब पृथ्वी में उमसता है तो बेटा! वो विशाल वृक्ष बन जाता है। और वो विशाल जब सिमटता है तो उसी में सिमट कर एक मानो अङ्कुर बन जाता है। वह अङ्कुर रूप उसका भी सूक्ष्म अङ्कुर रूप बन करके पृथ्वी में ओतप्रोत हो जाता है। पृथ्वी अपने में उसे समेट लेती है। मानो जितना भी ये मुझे दृष्टिपात आ रहा है या देवी! तुम्हें दृष्टिपात आ रहा है यह जगत अपने में सर्वत्र मानो सिमटा हुआ अपने में ही दृष्टिपात हो रहा है।

तो देवी! तुम्हें यह प्रतीत है कि तुम्हारे ये विचारों की मैंने एक भूमिका बनायी है। कि ये पृथ्वी ही इसे अपने में धारण करती है। ये वसुन्धरा कहलाती है। ये माता वसुन्धरा के रूप में परिणत रहती है, वसुन्धरा कहते हैं जो अपने में बसा लेती है, अपने में समाहित कर लेती है, अपने में धारण कर लेती है। तो यह पृथ्वी ही मुनिवरो! चारों प्रकार की सृष्टि का सूत्र कहलाती है। मेरे प्यारे ऋषि ने यह वाक् उच्चारण किये।

आपो में प्रतिष्ठित पृथ्वी

चाक्राणी अपने में आश्चर्य चकित होकर के बोली–प्रभु! मैं जानना चाहती हूँ कि यह जो पृथ्वी है इसका भी तो कोई सूत्र है? यह भी तो कहीं प्रतिष्ठित हो जाती है? उन्होंने कहा–देवी! ये जो पृथ्वी है ये आपो में सिमट जाती है, यह आपो में ओतप्रोत हो जाती है। यह आपो में, रजरूप में परिणत हो जाती है। अपने गुरुत्व को आपो में समर्पित कर देती है। मानो देखो, यह आपो ज्योति है, आपो जल है। आपो को ही जल कहते हैं। **'आपः आपं ब्रहेः व्रताम्'** आपो ही देखो, ये सर्व जगत आपो में निहित हो रहा है । ये मानो जल है, अभ्युदय होने वाला है।

चाक्राणी–बोली कि प्रभु! ये मैंने बहुत पुरातन काल में स्वीकार किया था। एक समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मेरे से बोले कि चलो, हे ब्रह्मचारियो! आज मगध राष्ट्र में गमन करेंगे। तो मगध राष्ट्र में हम पहुँचे। तो मगध राष्ट्र में भ्रमण करते हुए हम श्वेताश्वेतर ऋषि के आश्रम में पहुँचे। श्वेताश्वेतर ने हमारा स्वागत किया पूज्यपाद गुरुदेव का स्वागत किया। जब पूज्यपाद गुरुदेव का स्वागत किया गया तो पूज्यपाद से यह प्रश्न किया कि **'आपो आपो हि निष्ठां ब्रह्मवाचाः'** कि हे भगवन्! मैं आपो को जानना चाहती हूँ। **'आपोमयी ब्रह्माः'** मानो देखो, श्वेताश्वेतर ने कहा कि आपोब्रह्मे तो पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा–हे श्वेताश्वेतर! यह जो आपो है, ये ज्योति है। ये प्राण के देने वाली है। नाना प्रकार की सृष्टियों में मानो प्राणवर्धक है। मानो जैसे कृषक की भूमि, कृषक का अन्नः पिपासा में परिणत हो रहा है। जब मेघों से वृष्टि हो जाती है तो उसमें मानो प्राण आ जाता है। इसी प्रकार कृषक अपनी भूमि को जल देता है, आपो देता है। तो उसमें प्राण आ जाता है। मानो देखो, धातु पिपाद पृथ्वी में पनप रहा है। मानो जब उसे जल आपो की प्राप्ति हो जाती है तो वो बलिष्ठ बन जाता है। देखो, जब पिपाद में, उष्णता में, जब वो अपने प्राणतम् रूप में परिणत हो जाता है, तो उसे जल आपो प्राप्त हो गया है। तो प्राण बलवती हो गया है। तो आपो एक महत्वदायक कृतिका है। मानो देखो, उसे जानो। मेरे प्यारे! श्वेताश्वेतर ने कहा प्रभु! मैं यही तो जानना चाहता हूँ कि ये प्राणवर्धक है, प्राणि का हो ये मानो पुंज कहलाता है, मानो देखो, तभी, तो ये पृथ्वी इसमें ओत–प्रोत हो जाती है।

अग्नि में आपो की प्रतिष्ठा

तो भगवन्! ये आपो की भी तो कोई प्राण सत्ता है? मेरे प्यारे! देखो, यह वाक् उच्चारण करके उन्होंने कहा हे चाक्राणी! **'प्राणं ब्रह्मे वाचप्रहे'** देखो, यही तो आपोमयी हिरण्यं ब्रह्माग्नि कहलाती है। ये ही अग्नियाँ है। इन अग्नियों में ओत–प्रोत होने वाला ये अमूल्य जगत है।

मेरे प्यारे! इस प्रकार उन्होंने अपने वाक्यों की टिप्पणी करते हुए, विचार देते हुए अपने में बेटा! वो स्वतः मौन हो गये और मौन होकर के कहा, ये प्रश्न अब मेरा मस्तिष्क यहीं तक मानो क्रियाकलाप कर सका है। कल मुझे समय मिलेगा, तो मैं आगे की चर्चाएँ कल प्रगट करूँगा। बेटा! चाक्राणी भी अपनी स्थली पर मौन हो गयी। और ऋषि मुनियों ने चाक्राणी से कहा देवी! तुमने बहुत अच्छा प्रसङ्ग लिया है। इस ऋषि की परीक्षा भी हो जायेगी और ऋषि के ब्रह्मज्ञान का भी प्रतीत होगा कि यह कहाँ तक पहुँच गया है ब्रह्मज्ञान में। यह तुम्हारा प्रश्न बहुत प्रिय है। हम तुम्हारी सराहना करते हैं।

तो मुनिवरो! सब ब्रह्मवेत्ताओं ने चाक्राणी से जब यह कहा तो वो बोली कि प्रभु! आगे विचार, परन्तु चाक्राणी ने एक वाक् और कह दिया ऋषियों से कि ब्रह्मवेत्ताओ! तुम ब्रह्मवेत्ताओं में याज्ञवल्क्य विशेष ब्रह्मवेत्ता हैं। उन्होंने ने कहा–तुम क्या उच्चारण कर रही हो। ऐसा नहीं हो सकता। आगे प्रतीत होगा, तुम्हारा जो प्रसङ्ग है यह बड़ा गहन है और आगे इसकी प्रतिभा प्रतीत हो जायेगा। मेरे प्यारे! देखो, चाक्राणी ये श्रवण करके मौन हो गयी। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज, सन्ध्या काल हो गया, अपनी–अपनी स्थलियों को उन्होंने गमन किया।

ब्रह्म का ज्ञान

तो मेरे प्यारे! हमारे इन वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय क्या है? ये तुम जान गये होंगे। हमारे वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि परमात्मा की सृष्टि को, परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान को बेटा! इसमें रत रहने की आवश्यकता है। जब इसमें मानव गम्भीरता से मनन और चिन्तन करता है, गम्भीर मुद्रा में मुद्रित हो जाता है तो मुनिवरो! देखो, ब्रह्म का ज्ञान मानव के समीप आता है। ज्ञान और विज्ञान उभर कर के आता है। वह अपनी निष्ठा में निष्ठित हो जाता है। तो इसीलिये ऋषिओं का जो ज्ञान है वो बड़ा मननशील है और समाधिष्ट होकर के बेटा! उसके ऊपर प्रायः अन्वेषण, अनुसन्धान, विचार विनिमय में होता रहा है।

तो बेटा! ये आज का वाक् अब हमारा समाप्त होने जा रहा है। आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए, हम इस सागर से पार हो जायें। ये है बेटा! आज का वाक् अब मुझे समय मिलेगा, मैं तुम्हें शेष चर्चाएँ कल प्रगट करूँगा।

ओ३म् ब्रह्म गतौः अभ्यां रथं आपाः गायन्त्वा मां गताः
ओ३म् आपो वाचन्नमं, ब्रह्म वाया वृतहा मनः
ओ३म् सर्व मनाः वाचन्नमं, ब्रह्माः वायु रथाः

2.9.1985
ग्रा. टिगरी, मुरादाबाद

राष्ट्र का आधार

जीते रहो

देखो, मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भाँति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद मन्त्रों का पठन–पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद–वाणी का प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वेद वाणी में, उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन किया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा महिमावादी है और जितना भी ये जड़ जगत अथवा चैतन्य जगत हमें दृष्टिपात आ रहा है। उस सर्वत्र ब्रह्माण्ड के मूल में, प्रायः वो मेरा देव ही दृष्टिपात आ रहा है। नाना प्रकार की उड़ाने–उड़ता रहता है। परन्तु जब हम वे सर्वस्वः उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान अथवा उसकी महती पर चिन्तन, मनन करना प्रारम्भ करते हैं तो प्रायः हमारा हृदय गद्‌गद हो जाता है।

यज्ञो वै विष्णु

हम अपने में यह स्वीकार करते रहते हैं कि ये परमपिता परमात्मा यज्ञशाला का स्वामित्व करने वाला है। मानो यज्ञोमयी विष्णु का वर्णन हमारे यहाँ प्रायः वैदिक साहित्य में आता रहता है और विष्णु की विवेचना करने वाले आचार्यों ने भिन्न–भिन्न प्रकार की विवेचनाएँ की है। आज के हमारे वेद के पठन–पाठन में, प्रायः विष्णु की विवेचना आ रही थी और वर्णन आ रहा था कि वे परमपिता परमात्मा विष्णु है। मानो वो पालन करने वाला है। पालन करने वाले का नाम विष्णु कहा जाता है। जो भी पालन करता है वही विष्णु है। मानो जो सुगन्धि देने वाला है और अपने में अभ्योदय होने वाला है। उस परमपिता परमात्मा को विष्णुमयी कहा गया है। हमारे यहाँ यज्ञोमयी विष्णु का भी प्रायः वैदिक साहित्य में वर्णन आता रहता है। वैदिक अचार्यों ने यज्ञोमयी विष्णु की कल्पना की है। वह जो याग है वह विष्णु है। क्योंकि वह पालनकर्ता है, सुगन्धि–युक्त है। तो इसीलिये परमपिता परमात्मा का जहाँ नामोकरण आता है वहाँ यज्ञोमयी विष्णु मानो पालन करने वाली माता है। वैदिक साहित्य वालों ने नाना पुकार की टिप्पणियाँ करते हुए कहा कि माता का नाम भी विष्णु है। जो कल्याण करने वाली है। मानो जो पालना करती है। मेरे प्यारे। ये जो जननी माता है, ये पालन करने वाली है। मानो सतोगुण में भी और वही रजोगुण, वही तमोगुण, वही तीनों गुणावधानों को अपने में धारण करती हुई मानो वह पालन करती रहती है।

विष्णु स्वरूप माता

देखो! बाल्य अपने में प्रतिभाषित हो जाता है। परन्तु जब चिन्तन करने वालों ने चिंतन किया तो यह प्रतीत हुआ कि माता पालना करती है। वह जब मानो माता के गर्भ स्थल में शिशु है और शिशु जब बाह्य जगत में प्रवेश होता है तब मानो देखो, वही तो पालना करने वाली है, लोरियों का पान कराती रहती है। नाना प्रकार की शिक्षाएँ प्रदान करती रहती है। उन शिक्षाओं को उदबुद्ध प्रकाश में लाना, माता का प्रिय क्रिया–कलाप कहा गया है। तो विचार विनिमय में क्या, वेद का ऋषि कहता है। यज्ञोमयी विष्णु मेरे प्यारे! देखो, वह जो विष्णु है वह यागरूप में रहता है। जितना भी मानव कर्तव्यवादी बना हुआ है। कर्तव्य में निहित रहता है, तो वो यागकर्म में रत रहने वाला है।

विष्णु रूपी सूर्य

मेरे प्यारे! जहाँ माता का नाम विष्णु है, वहाँ विष्णु के बहुत से पर्यायवाची शब्द हैं। वेद के आचार्यों ने, वेद के मन्त्रो में मानो **"सूर्यनं ब्रह्मा वाचः प्रहे"** वह बेटा! वह विष्णु है, पालन करने वाला है। मेरे प्यारे! देखो, वह जो विष्णु हमारा पालन करता है वह सूर्य रूप में रत रहता है और सूर्य प्रातः काल में उदय होता है। प्रकाश को लेकर के आता है और मानव उसके प्रकाश में क्रियाकलाप करने लगते हैं, वही नाना प्रकार की जो किरणें हैं वही मानव के जीवन को उदबुद्ध करती रहती हैं। अथवा नेत्रों को प्रकाश दे करके, वे प्रायः प्रकाशित करती रहती हैं। तो वह कौन **'विष्णु ब्रह्म सूर्याणि।'** वेद का वाक् कहता है कि सूर्य–विष्णु है बेटा! यह द्यौ से प्रकाश लेता है, और प्रकाश देता, हुआ मानो देखो, विष्णु बनकर तपायमान और तपता रहता है और वह जो तपता रहता है मानो देखो, वह तपस्वी कहलाता है। नाना प्रकार के व्यंजनों की धाराओं में पृथ्वियों को अपने में रत करने वाला है।

तो मेरे प्यारे! वह विष्णु है जो द्यौ से प्रकाश लेता है और वह प्रकाश मानव को प्रकाशित करने लगता है। बेटा! यह ब्रह्माण्ड उसी से प्रकाशित हो रहा है। ब्रह्माण्ड तो नहीं कहना चाहिए परन्तु यह नाना पृथ्वियों को प्रकाशित करने वाला है। नाना लोक लोकान्तरों में उसका प्रकाश बेटा! अपने में प्रकाशित करने वाला है। तो मेरे प्यारे! उसका नाम विष्णु है। ऐसा मुझे स्मरण है। बेटा! हमारे यहाँ एक आख्यायिका आती है कि यह जो सूर्य है यह अपने में **"यागां भविते लोकं हिरण्यं रथाः व्रथा।"** मेरे प्यारे! देखो, जब यजमान अपनी यज्ञशाला में याग कर्म करता है **"यागां भविते लोकाम्"** बेटा! याग में परिणत होता है तो देखो, अपने में प्रवि व्रहाः कहलाता है।

तो मेरे प्यारे! हमारे यहाँ महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने मानो अपनी लेखनी बद्ध करते हुए कुछ ऐसा कहा है। कि यह जो विष्णु है, यह सूर्य–विष्णु रूप में जो रत रहने वाला है। यही तो मानव को प्रकाशित करता रहता है। उन्होंने बेटा! एक आख्यायिका प्रकट करते हुए कहा है–कि एक समय मानो यजमान याग कर रहे थे। यजमानों कि यह कामना थी कि हम याग करें तो हमारी विचार धारा मानो द्यौ–लोक तक चली जाये। तो बेटा! जब यजमान, होताजन विद्यमान हो करके बेटा! याग कर रहे थे, साकल्य को अग्नि में प्रदान कर रहे थे तो वह अग्नि अपने में उन्हें धारण कर रही थी।

इन्द्र–वृत्रासुर सङ् ग्राम

तो मेरे प्यारे! कहते हैं कि एक समय देखो, याग को एक **'हिरणाक्षं ब्रह्मवाचाः'** मानो देखो, 'हिरणाक्ष' शब्द आता है। हमारे वैदिक साहित्य में, आज भी आ रहा था **'हिरणाक्षं ब्रह्मे व्रताम्'** वेद का वाक् कहता है कि याग को हिरणाक्ष अपने में धारण कर लेता है। जब हिरणाक्ष ने मानो देखो, याग को लिया तो आगे वेद का मन्त्र कहता है। **'वक्रो समां ब्रह्मा व्रतं वृहिः प्रचाक्कत्कति जिब्रहा...... व्रहा!'** मेरे प्यारे! वेद का वाक् आया है कि हिरणाक्ष ने **'किरणं ब्रहेः'** याग को वृत्रासुर में परिणत कर दिया। वह वृत्रासुर में प्रवेश हो गया। जब वह वृत्रासुर में चला गया तो वृत्रासुर और इन्द्र दोनों का सङ्ग्राम होने लगा। जब मुनिवरो! देखो, याग को वृत्रासुर ने पान कर लिया तो वेद का मन्त्र कहता है **'इन्द्रो भवां ब्रह्मेः वत्रां वृहिः संगोवत्रसुति रूद्राः'** वेद का वाक् कहता है कि देखो, उस समय इन्द्र को यह प्रतीत हो गया कि देवताओं के धरोहर को हिरणाक्ष ने वृत्रासर को मुनिवरो! देखो, याग प्रदान कर दिया है।

तो बेटा! इन्द्र का और मानो वृत्रासर दोनों का सङ्ग्राम हुआ। जब दोनों का सङ्ग्राम हुआ, तो मुनिवरो! देखो, इन्द्र अपने वज्र से वह वृत्रासुर का वध करने लगे। जब वृत्रासुर का, धीमें–धीमें वध होकर **'दव वाचप्रहि बृहि व्रष्टां भविते लोकाम्'** कहते हैं इन्द्र और वत्रासुर का जब सङ्ग्राम हुआ तो वृत्रासुर समाप्त हो गया और वृत्रासुर के समाप्त होने पर मानो धीमा–धीमा उस याग की जो झरी थी वह बेटा! देखो, पृथ्वी में परिणत हो गयी। जब वह पृथ्वी में परिणत हो गयी।

बलि का अभिप्राय

तो आगे वेद की आख्यायिका कहती है कि **'बलं व्रहे वाचन् वृथं वृहि गौ रसं व्रहे वाचं पुत्राः'** कहते है कि गौ के बछड़े की वहाँ बलि का वर्णन आया है। बेटा! गऊ के बछड़े की बलि का पृथ्वी को प्रति शोध होने लगा। तो मेरे प्यारे देखो! वहाँ जब बैल की बलि का वर्णन आया तो बेटा! यह वाक् कई यागों में इस प्रकार का वर्णन आया। परन्तु विचार आता है कि बलि का अभिप्राय क्या है? प्रत्येक मानव अपने में बलि देना चाहता है। प्रत्येक मानव अपने में समर्पित करना चाहता है। तो मेरे प्यारे! हमारे यहाँ वैदिक साहित्यवेत्ताओं ने कहा है कि वृत्रासुर और इन्द्र का जब भयङ्कर सङ्ग्राम हुआ तो उस सङ्ग्राम की प्रतिक्रिया यह हुई कि वृत्रासुर का वध हुआ।

मेरे प्यारे! यहाँ वध का अभिप्राय क्या है और याग किसे कहते है? बेटा! देखो, यागां भविते देवाम् मुनिवरो! देखो, तेजोमयी एक शक्ति, साकल्य के समूह से उत्पन्न हुई और उसके उत्पन्न होने से देखो, हिरणाक्ष, हमारे यहाँ हिरणाक्ष किसे कहते है? हिरणाक्ष कहते हैं बेटा! धुन्द्र (धुआँ) को मानो अग्नि जब प्रदीप्त होती है तो अग्नि के साथ एक धुन्द्र होता है जो अग्नि को साक्षात्कार मानो उसकी प्रतिक्रिया का वर्णन करता है। मेरे प्यारे! जो उसको जानने वाला है। तो देखो, वह जब हिरणाक्ष याग को ले गया तो देखो, वैदिक साहित्य वालों ने, वेदो के मन्त्रों में आये **'हिरणाध धुन्द्रो भवा महे अग्नि पुत्रो भवं ब्रह्म वाचाः'** मुनिवरो! देखो, धुन्द्र अग्नि का पुत्र कहा गया है। जब यह अग्नि का पुत्र है तो देखो, यही पुत्र सर्वत्र याग को उन्होने वृत्रासुर को प्रदान कर दिया और मेरे प्यारे! सूर्य की नाना प्रकार की किरणों के द्वारा वह वृत्रासुर में परिणत हो गया था। उस आभा में **'युक्तः अभ्योदय मम ब्रह्मा बाच सम्भवः लोकाम्'** मेरे प्यारे! देखो, उसी में वो रत हो गया। रत हो जाने के पश्चात मुनिवरो! देखो, धीमी–धीमी देखो, वत्रात इन्द्र नाम वायु का है, अपने प्राणरूपी वज्र से तेजोमय अपनाते हुए वह धीमी–धीमी वृष्टि प्रारम्भ हो जाती है। जब वह धीमी वृष्टि प्रारम्भ हुई तब मुनिवरो! देखो! वहीं बैल की बलि का वर्णन आया।

वेद की आख्यायिका कहती है कि गौ का बछड़ा है, उसकी बलि का वर्णन है। तो बेटा! बलि का अभिप्राय यह है कि हम अपने को समर्पित कर दें और पुरुषार्थ करने का नाम बेटा! बलि है। क्योंकि जब पृथ्वी में मानो देखो, वृष्टि होती है तो यह नम्र बन जाती है। तो मुनिवरो! देखो, गऊ के बछड़ों को लेकर के मानो पृथ्वी की चमड़ी में उग्रात करते हुए, उसमें कृषक बीज की स्थापना कर देता है। तो वो नाना प्रकार के व्यंजनों वाली बन जाती है। तो यह जो सूर्य है यह अपनी नाना प्रकार की मेरे पुत्रो! तेजोमयी किरणों के द्वारा तेजोमयी बना देता है। तेजोमयी किरणों के द्वारा, जल को समुद्रों से लेता है और जल को वृत्रासुर को प्रदान कर देता है। इन्द्र का जब आगमन होता है। इन्द्र नाम यहाँ वायु का है, उसी में वो व्रत की क्रियाओं में रत होकर के धीमी–धीमी वृष्टि प्रारम्भ हो जाती है।

तो विचार विनिमय क्या मेरे पुत्रो! देखो, 'यागां विष्णु ब्रह्माः' विष्णु नाम सूर्य का है। यह सूर्य नाना प्रकार की धाराओं वाला है। आगे वेद का ऋषि कहता है यही तो मेरे प्यारे! शक्ति को पान करने के लिये द्यौ के समीप जाता है। द्यौ में प्रवेश करता है, द्यौ से सत्ता प्रदान करके मेरे पुत्रो! उसे जनसमूह में क्या, इस ब्रह्माण्ड की आभा में निहित कर देता है।

विष्णुरूपी चतुर्भुजी राजा

तो विचार विनिमय क्या? आज मैं बेटा! विशेष विवेचना तो तुम्हें नहीं देने आया हूँ। मैं तो व्याख्याता भी नहीं हूँ, केवल विचार यह दे रहा हूँ, कि हे विष्णु! तू कल्याणकारी है। हे विष्णु! तेरी प्रतिभा एक महानता में रत रहने वाली है। मेरे प्यारे! देखो, मुझे वो काल स्मरण आता रहता है। जिस काल में, ब्रह्मचारी आचार्यों के द्वारा अध्ययन करता है तो आचार्य से मेरे प्यारे! ब्रह्मचारी कहता है, हे भगवन्! यह विष्णु क्या है? क्योंकि वेद में बारम्बार विष्णु का वर्णन आता है। उन्होंने कहा–कि विष्णु नाम तो **'घोषितो विज्ञापो विज्ञप्ति'** में मानो देखो, विष्णु ब्रह्म वाचाः देखो उसे विष्णु कहते हैं। **'मम ब्रह्म व्रतेः'** कि मेरे प्यारे! देखो, राजा का नाम विष्णु, ऋषि ने नृत किया, आचार्य ने कहा–ब्रह्मचारी देखो, राजा का नाम विष्णु है। राजा के राष्ट्र में चारों पद होने चाहिए। राजा को विष्णु रूप में वर्णन किया जाता है बेटा! कौन–सा राजा विष्णु है? जिस राजा के राष्ट्र में देखो, चार प्रकार की नियमावली होती है। चार प्रकार की नियमावलियों का नामोकरण बेटा! राष्ट्र कहा जाता है। वे राष्ट्र के चार भुज कहलाते हैं। क्योंकि विष्णु के चार भुज हैं। वो चतुर्भुज कहलाता है। इसी प्रकार राजा के भी चार भुज होते हैं। भुजाओं का अभिप्राय यह है कि चार प्रकार की नियमावली होनी चाहिये। मेरे पुत्रो! देखो, जो ब्रह्म साधना में परिणत करता है वो देखो, अनन्य भुजाओं वाला बनता है। जैसे हमारे यहाँ त्रेता के काल में राजा रावण के सम्बन्ध में कहा जाता है।

दशानन रावण का अभिप्राय

एक समय मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे यह वर्णन कराया कि देखो, रावण की दस वृत्तियाँ कहलाती थीं। मानो दशानन उनको कहा जाता था जो दस सिरों वाला हो, मानो दस प्रकार की प्रतिभा वाला है तो राजा रावण को मानो देखो, दशानन इसीलिये कहते थे क्योंकि परमपिता परमात्मा की सृष्टि का नियम है कि मानव को एक ही सिर होता है। एक ही मानो देखो, दशानन, होता है। मानो देखो, वह वृत्तियों में ये मानव का जो शरीर है यह प्रायः देखो, एक वृक्ष के तुल्य है। जैसे वृक्ष की शाखाएँ ऊपर को जाती है उसी प्रकार मानव की जो शाखाएँ हैं, इस शरीर की शाखाएँ नीचे को गयी हैं। तो मेरे प्यारे! देखो, यह उल्टा वृक्ष कहा जाता है। जैसे वृक्ष की कल्पना कि जाती है। ऐसे ही मानव की कल्पना की जाती है।

मेरे पुत्रो! देखो, इसीलिये रावण को दशानन, दस सिरों वाला कहते हैं। क्योंकि देखो, दस सिर नहीं, वह दस प्रकार की प्रवृत्तियों में रत रहते थे। देखो, राष्ट्र के दस प्रकार के नियम भी होते हैं। देखो, जो उसमें पारायण होता है वो दशानन कहलाता है। वास्तव में दस सिरों का ये परमात्मा का नियम और देखो, उसकी प्रणाली के विपरीत यह राष्ट्र बन जाता है। परन्तु इसी प्रकार देखो, भुजाओं का नामोकरण भी एक नियमावली कहलाता है। जैसे देखो, एक भक्त जन परमात्मा के समीप पहुँचना चाहता है। तो परमात्मा के द्वार पर जब पहुँचना है तो देखो, उसकी नाना भुजाएँ, नाना प्रकार के नियम होते है। प्रातः काल अपने आसन को त्यागकर के देखो, वह **'भ्रमणां वृहि व्रताम्।'** मेरे प्यारे! शुद्व वायु में भ्रमण करता है परन्तु उसके पश्चात अपनी नाना क्रियाओं से निवृत्त हो करके याग करता है। उसके पश्चात् पंच यागों में परिणत हो जाता है।

राजा की प्रथम भुजा "गदा"

तो वो जो भगवान् का भक्त है, अथवा प्रियतम है, जो परमपिता परमात्मा के निकट जाने के लिये, नाना प्रकट की नियमावलियों का निर्माण करता है। उसकी भुजा कही जाती है। इसीलिये राजा के राष्ट्र में भी चार प्रकार की भुजाओं वाला बेटा! राष्ट्र होता है। चार प्रकार के नियम होते हैं। मुख्य–मुख्य मेरे प्यारे! सबसे प्रथम नियम होता है कि राजा के राष्ट्र में चरित्र होना चहिए। जब राजा के राष्ट्र में नैतिकता होती है प्रत्येक मानव अपने–अपने कर्तव्य का पालन करता है। वह जो पालन करने वाला है वह अपनी पालना कर रहा है परन्तु राजा की एक भुज का निर्माण हो रहा है। राजा की एक भुज का निर्माण हो गया तो मेरे प्यारे! देखो, उस भुज का नाम गदा है। देखो, जिसके भुजा में गदा है वो क्षत्रियजन है। राजा के राष्ट्र में सीमा के प्रहरी हैं जो मानो राष्ट्र के प्रहरी, अपने में क्रिया–कलाप करते हैं। आततायियों को दण्ड देना है। और मानो देखो, महापुरुषों की सेवा करनी है। महापुरुषों का उज्ज्वल क्रिया–कलाप बनाना है।

मेरे प्यारे! देखो, जो तपस्वीजन, महापुरूष होते हैं राष्ट्र के कोष में से उनका सर्वत्र देखो, प्रबन्ध होना चाहिए। उनका देखो, **'कृतां भवि व्रतां देवः'** देखो, उनके खान–पान का, परिवारवृत्ति होनी चाहिए। जिससे राजा के राष्ट्र में, वह अपना प्रसार कर सकें और महानता का उपदेश दे सकें। देखो, क्षत्रिय धर्म और उसकी मानवीयता को उदबुद्ध करने वाले हो। राजा के राष्ट्र में बेटा! देखो, इस प्रकार के नियम, की मानवीयता क्षत्रिय अपनी गदा से, गदा को लेकर के प्रहरी बने रहें और प्रहरी बनकर के दुष्चरित्रता न आने दें। केवल महानता की प्रतिभा का प्रतीक होना चहिए।

द्वितीय भुजा "संस्कृति"

तो मेरे प्यारे! देखो, उस समय ऋषि जो कहते हैं, हे ब्रह्मचारियो! विष्णु की द्वितीय भुजा जो है वो संस्कृति कहलाती है। मानो संस्कृति उसे कहते हैं जहाँ वह अपने राष्ट्र को ऊँचा बना सकें। राजा के राष्ट्र में ऐसी संस्कृति, ऐसी भाषा होनी चाहिए कि द्वितीय राष्ट्र उसको अपनाने पर तत्पर हो जाये। और उस भाषा में अपनी संस्कृति, कला कौशलता हो, मानवीयता हो, और महानता का प्रायः दर्शन होता हो। तो मानो देखो, वैश्यजन अपने में निहित रहने वाले, मानो उस संस्कृति को अपनाने वाले हों। मानो राजा के राष्ट्र में एक नियमावली बन गयी है कि हमारी संस्कृति वेद के पठन–पाठन में चलेगी। देखो, वह इतनी प्रियतम् होनी चाहिए, जिससे संस्कृति अपनी स्थलियों पर उग्र रूप को धारण न करके, नम्रता को लेकर के राष्ट्र को ऊँचा बना सके। तो मेरे प्यारे! देखो, द्वितीय भुजा राजा की अपनी संस्कृति है। अपनी भेष वृत्तियाँ हैं, जिससे मानव अपने जीवन को ऊँचा बना सके और उस भाषा का अपने में उद्‌बोध कर सकें जिस भाषा के उद्‌बोध करने से मानव के हृदय और मानवीयता ऊँची बन सके।

तृतीय भुजा शंखवेद

मेरे प्यारे! देखो! तृतीय **'ब्रह्म ब्रहे'** बुद्धिमान है राजा के राष्ट्र में ब्राह्मणत्व है। मानो देखो, जो ऊँचे स्वरों से गान गा रहा है, गान गाता हुआ राजा के राष्ट्र को ऊँचा बनाना चाहता है मेरे प्यारे! देखो, तो राजा के राष्ट्र में बुद्धिजीवी प्राणी रहने चाहिए। जिससे राजा के राष्ट्र में बुद्धिजीवी प्राणी राष्ट्र को ऊँचा बना सकें। मानव को ज्ञान और वेद दे करके राष्ट्र में ऊँची वार्ता को प्रकट कर सकें। बेटा! वेद नाम प्रकाश का है। वेद नाम मानवीय जीवन का है। वेद नाम राष्ट्र के प्राण का है, यदि बेटा! राजा के राष्ट्र से आत्म विद्या चली जाती है, आत्मा का ज्ञान नहीं रह पाता तो उसकी प्रतिभा समाप्त हो जाती है।

तो परिणाम क्या मुनिवरो! देखो, विष्णु नाम राजा का है। राजा के चतुर्भुज में, विष्णु के चतुर्भुज में मुनिवरो! देखो! बुद्धिजीवी प्राणी रहने चाहिए। बुद्धिजीवी कौन है? जैसे पाण्डित्व है, ऋषित्व हैं, वह ऋषित्व जो राष्ट्र से ऊँची वार्ता को अपने में लाना चाहते है। ऊँची उड़ानें उड़ते रहते है जिससे राष्ट्र का कल्याण होता है, समाज में महानता का दर्शन होता है। बुद्धिजीवी प्राणी जब राष्ट्र में भ्रमण करते हैं और प्रत्येक गृह में जाते हैं तो यागों में परिणत करा देते हैं। अज्ञान को नहीं आने देते। नाना प्रकार की रूढ़ियाँ भी नहीं आने पातीं। तो देखो, जब इस प्रकार बुद्धिजीवी प्राणी और वेद का गान गाने वाले बुद्धिजीवी प्राणी राजा के राष्ट्र में होते हैं। तो समाज में अज्ञानता नहीं होती और अज्ञानता न रहने से बेटा! रूढ़िवाद भी नहीं होता। जब रूढ़िवाद नहीं पनपता है तो राजा के राष्ट्र में ऊँचा, महान क्रियाकलाप बना रहता है। राजा के राष्ट्र में रूढ़िवाद उस काल में, समाज में बनता है, जब मुनिवरो! देखो, अज्ञान छा जाता है तो देखो, अपने में बुद्धिजीवी प्राणी राजा के राष्ट्र में सूक्ष्म हो जाते हैं और जब तक वेद का पठन–पाठन करने वाले, उद्‌गीत गाने वाले, वेदों की पवित्र विद्या को धारण करने वाले, जो वेद की विद्या का अध्ययन करता है वह अपने में समझ पाता है। अपने में जान लेता है कि परमात्मा का यह अनन्तमयी जगत है। मैं परमात्मा के राष्ट्र में अपने को ऊँचा, ऊर्ध्वा में न ले जाऊँ तो ये मेरी धृष्टता होगी। परमात्मा तो अनन्त है। उसका ज्ञान और विज्ञान भी अनन्त है।, जो योगाभ्यास करने वाले हैं परमात्मा की सृष्टि को निहारने वाले हैं। परमात्मा की सृष्टि को महान बनाने वाले हैं, बेटा! वह परमपिता परमात्मा की प्रतिभा में रत हो जाते हैं।

तो मेरे प्यारे वो जानते हैं कि प्रभु अनन्त है, वो अनन्तमयी है। मैं मार्ग को त्याग करके कहीं जाना नहीं चाहता। परन्तु जब अज्ञान, राजा के राष्ट्र में, समाज में आ जाता है तो वो उस मार्ग को, आत्मा का पिपासी उस मार्ग को प्राप्त करता है। उस मार्ग में सीमाबद्व हो जाता है। क्योंकि ज्ञान और विवेक न होने से जब सीमाबद्व हो जाता है तो अपने जीवन को रूढ़िवादी बना लेता है। वह अपने में मानो प्रजा में एक प्रतिष्ठित बन जाता है। प्रजा उसे भगवान के स्वरूप में वर्णन करने लगती है। तो मेरे प्यारे! देखो! वहाँ रूढ़िवाद आ जाता है।

रूढ़िवाद इस समाज की और राष्ट्र की प्रतिभा को नष्ट कर देता है। तो इसीलिये मेरे पुत्रो! मैंने कई काल में वर्णन करते हुए कहा–कि विष्णु में मानो चतुर्भज में शङ्ख ध्वनि और ध्वनि कैसी? जो वेदों का नाद है। अथवा वेद की ध्वनियाँ हैं। वेद में से जो वेद गान गाने वाले हैं। जैसे जटापाठ गाता है, धनपाठ, मालापाठ, विकृतपाठ, उदात्त और अनुदात्त में गाता रहता है। तो मानो राजा के राष्ट्र में व्याख्याता होने चाहिए। एक–एक मन्त्र हमें कहाँ पहुँचाता है। एक–एक वेद मन्त्र हमें परमात्मा के समीप और मोक्ष की पगडण्डी में ले जाता है।

चतुर्थ भुजा चक्र

तो विचार विनिमय क्या बेटा! वेद का मन्त्र, वेद का आचार्य यही तो कह रहा है कि हे मानव! तू अपनी मानवीयत्व को चतुर्भुजों वाला बना। भुज का अभिप्राय है, नियमावली, जो भी नियमावली को धारण करता है उसकी भुज बन जाती है और जितना वो मानो महान से महान चिन्तन करता है या वो देखो, विकृतियों में, सुकृतियों, में दोनों का चिन्तन करता है उसमें उसके चरित्र का निर्माण हो जाता है। जैसा में अभी–अभी राम, रावण की चर्चा कर रहा था। राजा रावण को मेरे प्यारे महानन्द जी ने दस सिरों वाला कहा परन्तु दस सिरों वाला नहीं, छः दर्शनों का पाण्डित्य होने से उसके पश्चात् भी राष्ट्र को चरित्रवान नहीं बना सका। तो इसीलिये राजा रावण को दशानन कहते है। दशानन का अभिप्राय यह कि छः दर्शनों की बुद्धिमत्ता होने से, चारों वेदों को अपने में ग्रहण करने से वेदों के प्रत्येक मन्त्र की व्याख्या में परिणत करना। परन्तु उसके पश्चात भी वह मुनिवरो! देखो, अपने राष्ट्र को चरित्र नहीं दे सका। विज्ञान में ले गया, विज्ञान को वैज्ञानिक बनाते है। क्योंकि राजा रावण के राष्ट्र में बेटा! इतना विज्ञान रहा है। मैं मुनिवरो! देखो, उस काल की सराहना करता रहता हूँ कि उनके यहाँ कितना विज्ञान अपनी पराकाष्ठा पर रहा है।

तो विचार विनिमय क्या? मेरे पुत्रो! कि हमारा जितना भी अध्ययन है, अध्ययन की परम्परा में बेटा! ऐसा कहा जाता है। परन्तु देखो राष्ट्र की नियमावलियों में भुज–वर्तक कहा जाता है तो विचार विनिमय क्या है मेरे पुत्रो! हम मानो देखो, वह जो परमपिता परमात्मा है, वह तो अनन्त भुजों वाला है। क्या विष्णु परमात्मा को ही स्वीकार करते हैं? उसको हम यह स्वीकार करें कि वह तो केवल चतुर्भुजों वाला है वो चारों भुजा ही नहीं हैं। क्योिंकि छह हमारे यहाँ दिशाएँ मानी जाती हैं। यदि यह भी ले कि वह ध्रुवा में, ऊर्ध्वा में रत रहने वाले परमात्मा तो अनन्त भुजों वाला है। अनन्त भुजा क्या है? मेरे प्यारे! परमात्मा अनन्त भुजों वाला ही नहीं, वह तो सर्वज्ञ है, वह महान है, परन्तु विष्णु है, पालन करने वाला है। वह नाना प्रकार के रूपों में पालन कर रहा है

तो मेरे पुत्रो! मैं विशेष विवेचना न देता हुआ केवल तुम्हें वाक् यह उच्चारण कर रहा हूँ कि मुनिवरो! देखो, विष्णु, यज्ञोमयी विष्णु मेरे प्यारे! जो भी अपने कर्तव्य का पालन करता है, वो राजा विष्णु बन करके रहता है। अपने में महान बना रहता है।

तो विचार विनिमय क्या? मेरे पुत्रो! देखो, रावण को इसलिये भी दशानन कहते थे, कि वे दश राष्ट्रों को, लङ्का को प्राप्त करके मानो दश राष्ट्रों को उन्होंने विजय किया था और दश राष्ट्रों में विजय करके मुनिवरो! देखो, लङ्का के स्वामित्व में, अपने में रत रहा। तो मेरे प्यारे! देखो, वह बड़े विचारक, शक्तिशाली अपने में मानो प्रियतम का गान, नृत करते रहते थे, परन्तु चरित्र को नहीं दे सके। तो विचार विनिमय क्या? मेरे पुत्रो! देखो, वही राजा, समाज और चरित्र को महानता दे सकता है जो वेद की पतिका को अपनाता हुआ और मुनिवरो! देखो! राष्ट्र को ऊँचा बना सके।

तो मेरे प्यारे! मैं विशेष चर्चाएँ तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूँ विचार यह देने आया हूँ कि आज के हमारे वेद के पठन–पाठन में विष्णु की विवेचना आ रही थी। विष्णु की चर्चाएँ आ रही थीं। मानो देखो, पूर्व काल में हम जनक की सभा में चले गये थे। परन्तु आज हम विष्णु के राष्ट्र में चले गये क्योंकि वेद की पोथी का जब उग्र रूप बनता हैं, वेद मन्त्र आता है तो उसकी दशा मानो देखो, द्वितीय बन जाती है।

वह इसी प्रकार आज का हमारा ये वाक् क्या कहता है? राजा को यदि ऊँचा बनना है तो विष्णु बनना होगा और चार प्रकार के नियम होंगे। मेरे प्यारे! देखो, सदाचार, शिष्टाचार, वाणी पवित्र हो और सदाचार से गुथी हुई हो, मानो मेरे प्यारे! छल, कपट वाली न हो। मेरे पुत्रो! देखो, पुत्रियों की रक्षा करने वाला हो वह पदम् कहलाता है। द्वितीय भुज में गदा है और क्षत्रिय पवित्र हों, शोषण करने वाले न हों। मानो मेरे प्यारे! वो राजा का राष्ट्र **'गदाधर**

वृहि' ज्ञान को भी गदा कहते हैं। देखो, तृतीय भुज में संस्कृति चक्र होना चाहिए। जो सर्वत्रता में चक्र अपनी गति करता है। राष्ट्र का अपना एक चक्र होता है। उस चक्र को अपनाया जाता है। मेरे प्यारे! इस संस्कृति को अपना करके और बुद्धिजीवी प्राणियों की हम सहायता करें और जिससे बुद्धिजीवी प्राणी हमें अपनी विद्या का उद्घोष दे सकें। विज्ञाता अध्ययन करते हुए बेटा! देखो, राजा रावण इत्यादियों की चर्चाएँ भी स्मरण आती रहीं हैं। परन्तु मैं राष्ट्र की चर्चा कर रहा था। वेद में राष्ट्र का बड़ा वर्णन आता है। वास्तव में परमपिता परमात्मा का जितना जगत है, ये सर्वत्र राष्ट्र ही कहलाता है। जितना भी यह भव्य जगत दृष्टिपात आता है। यह अपने में ही निहित रहने वाला है।

पालक विष्णु

तो आओ, मेरे प्यारे! मैं विशेष विवेचना नहीं देने आया हूँ, विचार यह देने के लिये आया हूँ कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, हम विष्णु राजा को, परमात्मा को, और विष्णु सूर्य को और यज्ञोमयी विष्णु, मेरे प्यारे! माता का नाम विष्णु, जो पालना करने वाली उसका नाम विष्णु है। राजा भी पालन बनाने के लिये, अनुशासन में लाने के लिये, महापुरूषों की रक्षा करने के लिये बेटा! वो नियम बना रहा है। परन्तु संस्कृति का उद्बोधन कर रहा है। जिससे वो संसार उस संस्कृति को अपने में स्वीकृत करता रहे। इसी प्रकार मेरे प्यारे! वह बुद्धिजीवी प्राणियों की रक्षा करता है कि मेरे राष्ट्र में सदाचार और मानवीयता आ जाये बेटा! ये राज के नियम अब्रहे होते है। ये, पालना करने वाला है तो इसलिये परमपिता परमात्मा जो सर्वज्ञ है। पालना करने वाला है, मानो अपने में धारण कर रहा है। सूर्य प्रकाश के देने वाला है इसलिये वो विष्णु है, आगे विष्णु की चर्चाएँ बेटा! हम कल प्रकट करेंगें। आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पठन–पाठन होगा।

आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय क्या कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए **'विष्णु तव अब्रहे'** अपनाते हुए बेटा! देखो, राष्ट्र को ऊँचा बनाएँ। समाज को ऊँचा बनाए ये आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पठन–पाठन होगा। इसके पश्चात् ये वार्ता समाप्त हो जायेगी।

ओ३म् देवं भविताः मां ऋषि हती वरूणं वृहिताःवाचन्नमः
ओ३म् विष्णु गतं मां रथप्राची गताः
आभ्यां मनः वाचन धटप्राणं आभा
ओ३म् दिव्यां रथं ब्रह्माः वाचन्नमः

3.9.1985
ग्रा. टिगरी, मुरादाबाद

आध्यात्मिकवाद पर ऋषियों की संगोष्ठी

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भाँति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण–गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद मंन्त्रों का पठन–पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद–वाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेद–वाणी में, उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का गुण–गान गाया जाता है क्योंकि वे परमपिता परमात्मा महान है, सर्वज्ञ है। कोई स्थली ऐसी नहीं है जहाँ वे परमपिता परमात्मा न हो। क्योंकि यह ब्रह्माण्ड और यह संसार जो हमें दृष्टिपात आ रहा है, यह परमपिता परमात्मा का गृह है, आयतन है। इसी में वह वास करता रहता है। इससे हमारे यहाँ यह प्रतीत होता है कि जितना भी अनुवाद है यह उस ब्रह्म का आयतन माना गया है क्योंकि वह उसमें वास कर रहा है। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही नाना विज्ञानवेत्ता अपने में अन्वेषण करते रहते हैं और नाना जो गम्भीर योगेश्वर होते हैं जो आध्यात्मिक विज्ञान में रत रहते हैं वे अपनी आभा में नियुक्त रहने वाले, उस परब्रह्म परमात्मा का अपने में सदैव गुणानुवादन करते रहते हैं।

परमात्मा के गुण

उस परमपिता परमात्मा के नामोकरण से हिंसा का कोई समन्वय नहीं होता। वह परमपिता परमात्मा नम्र है। इसलिये मानव को भी नम्र बनना होगा। वह परमपिता परमात्मा निराभिमानी है इसलिये जो मानव उसे पान करना चाहते हैं। उस मानव को निराभिमानी बनना होगा। परमात्मा सर्वज्ञ है, इसीलिये मानव को अपने व्यापक विचार बनाने होगें। और यदि इनमें से हम में गुण नहीं आता तो हम परमात्मा के समीप नहीं जा सकते। इसीलिये हमारे यहाँ वैदिक ऋषियों ने सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके वर्तमान काल तक जो गम्भीर आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता बनना चाहते हैं, वह अपने में इस ब्रह्माण्ड को दृष्टिपात करते हैं। वह अपने में ही इस प्रतिभा का भान करते रहते हैं

आओ, मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा तो प्रकट करने नहीं आया हूँ। कुछ परिचय देने आया हूँ और परिचय देना हमारा कर्त्तव्य माना गया है। क्योंकि हमारे यहाँ वेदों का उद्गीत गाया जाता है और वेद मंन्त्र उस परमपिता परमात्मा की महिमा का वर्णन करता है। इस से पूर्व काल में हमने तुम्हें ज्ञान और विज्ञान की और ब्रह्माण्ड के कुछ अंशो की वार्ता प्रकट की। उन पर विचार देते हुए तुम्हें ऐसा भान हो गया होगा जैसे हम परमात्मा की विज्ञानशाला में विद्यमान हैं। यह जो परमात्मा का जगत है, जहाँ वह विज्ञानशाला के रूप में रहता है वहाँ आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता इसके ऊपर परम्परागतों से अन्वेषण करते रहते हैं। साधकजन साधना करते रहते हैं और साधना में वह प्राण को अपनाकर साधक बनना प्रारम्भ करते हैं। मन को उसमें कटिबद्ध कर देते हैं जिससे यह संसार अपने में, व्यापकता के रूप में इस ब्रह्माण्ड को स्वीकार करने लगे।

राष्ट्र की पवित्र वेदी

आज मैं पुनः से तुम्हें महाराजा अश्वपति के राष्ट्र में ले जाना चाहता हूँ। महाराजा अश्वपति के राष्ट्र में भिन्न–भिन्न प्रकार के विचारवेत्ता, भिन्न–भिन्न प्रकार के साधकों को शिक्षा देने वाले अपनी विचारधारा प्रकट करते रहते थे। मुझे पुनः से वह काल स्मरण आ रहा है। इस से पूर्व काल में हम ने निर्णय देते हुए कहा था कि राजा को अपना राष्ट्र यदि ऊँचा बनाना है, राजा को यदि अपने में प्रतिभाशाली बनना है तो राजा के यहाँ ब्रह्मवेत्ताओं की गोष्ठियाँ होनी चाहिये। क्योंकि राजा के राष्ट्र में विचारधाराएँ भिन्न हो सकती हैं परन्तु रूढ़ि नहीं होनी चाहिए। क्योंकि रूढ़िवाद राष्ट्र को रसातल में ले जाता है जैसा मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे वर्णन कराया कि धर्म के नाम पर नाना प्रकार की जो रूढ़ियाँ होती हैं वह राष्ट्र को पनपने नहीं दिया करती। तो इसीलिये हमारे आचार्यों ने बड़ी ऊँची घोषणा की है। उन्होंने कहा–वेद हमारे यहाँ निष्पक्ष ज्ञान को कहते है। उस में विज्ञान है, उस में मानवीयता है, उस में दर्शन है। उस दर्शन के ऊपर अपने राष्ट्र और विद्यालयों को ऊँचा बनाया जाये तो यह नाना प्रकार की रूढ़ियाँ पनपा नहीं करतीं और जब रूढ़ि नहीं पनपती तो राजा का राष्ट्र पवित्रता की वेदी पर सदैव रत रहता है।

महाराजा अश्वपति द्वारा संगोष्ठी का आयोजन

मुनिवरो! देखो, आज मैं तुम्हें उस क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ जहाँ महाराजा अश्वपति के यहाँ वैज्ञानिकों की सभा होती और वैज्ञानिक अपना–अपना निर्णय देते रहते थे और वह माला के रूप में इस ब्रह्माण्ड को अपने में स्वीकार करते रहे हैं। इससे पूर्व काल में मैंने तुम्हें मालाओं की चर्चा की और एक दूसरा एक–दूसरे में पिरोया हुआ है। जैसे माता का पुत्र माता में पिरोया हुआ है और माता पुत्र में पिरोयी हुई है। पुत्री पिता में पिरोयी हुई है और पिता पुत्री में पिरोया हुआ है। इसी प्रकार जैसे पत्नी पति में पिरोयी हुई रहती है। इसी प्रकार पति पत्नी में पिरोया हुआ रहता है। तो बेटा! यह ब्रह्माण्ड एक–दूसरे में पूरक कहलाते हैं। जैसे एक प्राणी–प्राणी में पिरोया हुआ है। गौ में बछड़े और बछड़े में कृषक और कृषक पृथ्वी में पिरोया हुआ है। यह कैसा एक अनुपम मेरे प्यारे प्रभु का ब्रह्माण्ड है, जो एक–दूसरे में पिरोया हुआ सा एक माला के सदृश्य यह ब्रह्माण्ड हमें दृष्टिपात आता है। जितना भी मानव का क्रिया–कलाप है वह किसी भी रूपों में हो परन्तु वह पिरोया हुआ है। जैसे पृथ्वी से पिरोये हुए नाना प्राणी हैं और नाना प्राणी एक–दूसरे में पिरोये हुए हैं। जैसे सर्पराज वायु में से विष को सिंचन करता रहता है। वह विष को लेता है और अमृत को त्यागता रहता है मानव प्राणियों के लिये। इसी प्रकार और भी नाना प्राणी हैं। जैसे हिंसक प्राणी हैं, वह हिंसक नहीं हैं। वह हिंसक तब तक हैं जब तक मानव उन्हें एक–दूसरे में पिरोया हुआ स्वीकार नहीं करता है, तब तक वह हिंसक बने रहते हैं। और जब वह एक–दूसरे में पिरोये हुये स्वीकार कर लेते हैं, इस में आत्मा है, इस में धारणा है, उस के पश्चात् वह अपनी हिंसा को त्याग करके अहिंसा परमोधर्म में परिणत हो जाते हैं।

तो मेरे पुत्रो! मैं कहाँ चला गया हूँ? विचार यह दे रहा हूँ कि महाराजा अश्वपति के यहाँ ब्रह्मवेत्ताओं का समाज एकत्रित हुआ। उन ब्रह्मवेत्ताओं में नाना ऋषि थे, जैसे देव ऋषि नारद, महर्षि प्रवाहण, महर्षि शिलक, महर्षि दालभ्य, महर्षि रेणकेतु, स्वामी मन्तकेतु, महर्षि सोमकेतु ऋषि महाराजा, महर्षि स्वाति मुनि, महर्षि विभाण्डक, महर्षि वैशम्पायन, महर्षि उद्गोम ऋषि महाराज, महर्षि मुद्गल, दीक्षान्तकेतु ऋषि महाराज, ब्रह्मचारी कवन्धी, मुनियों! ब्रह्मचारी सुकेता, ब्रह्मचारी पनपेतु महर्षि श्वेताश्वेतर आदि ऋषि मुनिओं का एक समाज एकत्रित हुआ। उनमें ब्रह्मवेत्ता भी थे और विज्ञानवेत्ता भी थे। उस सभा में एक सभापति बना और सभापति बन करके राजा अपनी स्थली पर विद्यमान हो गया। एक पंक्ति में वैज्ञानिक विद्यमान हैं, एक पंक्ति में ब्रह्मचारी, विद्यमान हैं, एक पंक्ति में ब्रह्मवेत्ता विद्यमान हैं, एक पंक्ति में ब्रह्मनिष्ठ विद्यमान हैं। नाना ऋषि मुनि अपनी–अपनी आभा में नियुक्त हो रहे थे, गाड़ीवान रेवक मुनि महाराज उस सभा में विद्यमान थे। विचार–विनिमय प्रारम्भ होने लगा। महर्षि श्वेताश्वेतर को अध्यक्ष पद प्रदान किया और उन से यह प्रश्न किया गया कि महाराज आध्यात्मिकवाद के सम्बन्ध में कुछ विचार विनिमय है क्योंकि राजा के राष्ट्र में, समाज में आध्यात्मिकवाद होना चाहिये। बिना आध्यात्मिकवाद के राजा का राष्ट्र अपंग हो जाता है, बिना विज्ञान के राजा का राष्ट्र ऊर्ध्वा में नहीं रहता है। राष्ट्र का जो विज्ञान है, राष्ट्र के जो वैज्ञानिक पुरुष हैं वह ऐसे जानो जैसे राष्ट्र का सिर होता है।

अध्यात्म में राष्ट्र के प्राण

मुनिवरो! देखो, यह जो आध्यात्मिकवाद है यह ऐसा है जैसे राष्ट्र का प्राण होता है। यदि राजा के राष्ट्र में आध्यात्मिकवाद या विद्यालय में आध्यात्मिकवाद नहीं होगा तो जानो कि राजा के राष्ट्र का प्राण चला गया। मुनिवरो! देखो, प्राण की हमेशा प्रतिष्ठा होती है समाज में प्राण की ही साधकजन, साधना करके ब्रह्म को प्राप्त करते हैं। प्राण की साधना करते हुए ही साधक आचार्यों के उच्चारण किये हुए नियमों के आधार पर प्राण में ही उस को पिरो लेते हैं जैसे मुनिवरो! धागा है और मनके हैं। नाना मनके एक सूत्र में पिरोये जाते हैं तो वह माला बन जाती है और माला बन करके जो शब्दों की माला बनाना जानता है, प्रत्येक शब्द को श्वास की आभा में, माला सूत्र में पिरोना जानता है, वही तो साधक ऊँचा होता है। वही तो परमपिता परमात्मा को प्राप्त करता है, वही तो अपने में प्राण–प्रतिष्ठा को लाता है, प्राण उस में प्रतिष्ठित हो जाता है।

तो आओ, आज में तुम्हें महर्षि, मुनियों का जो अपना–अपना वक्तव्य है उस पर ले जाना चाहता हूँ। श्वेताश्वेतर महर्षि ने आज्ञा दी कि हे ब्रह्मवेत्ताओ! अपना–अपना विचार प्रकट करो। उस में चाक्राणी गार्गी भी विद्यमान हैं। उसी सभा में रोहिणीकेतु, महर्षि पनपेतु, वेदकेतु ऋषि महाराज की कन्या भी विद्यमान हैं। वह भी ब्रह्मवेत्ता हैं, ब्रह्मनिष्ठ हैं।

महर्षि श्वेताश्वेतर का अध्यक्षीय उद्गार

तो मुनिवरो! देखो, विचार आया कि हम सब जो एकत्रित हुए हैं इस सभा में, वह इसलिये हुए हैं कि हमें आत्म–विचार करना चाहिए। आत्मा के विषय में अपना–अपना वक्तव्य, जिसे हम आध्यात्मिकवाद कहते हैं यह आध्यात्मिकवाद हमारे यहाँ परम्परागतों से ही ऋषि–मुनियों के मस्तिष्कों में सदैव नृत करता रहा है। आध्यात्मिकवाद ही मेरी प्यारी माताओं के हृदयों में सदैव वास करता रहा है। इसीलिये आज हम आध्यात्मिकवाद, आध्यात्मिक विज्ञान की चर्चा करने के लिये उपस्थित हुए हैं। जैसे इससे पूर्व काल में हम ने तुम्हें भौतिक विज्ञान की चर्चाएँ की हैं। एक–दूसरे में लोक–लोकान्तरों की माला बनायी है। इसी प्रकार तुम भी आध्यात्मिकवाद की एक माला बनाओ और उस माला को धारण करने वाले बनो, जिससे बेटा! राजा का राष्ट्र पवित्र बन जाये। यदि माला को तुम ने उच्चारण कर दिया है और उस माला को तुम ने धारण नहीं किया है तो वह माला तुम्हारी असार्थक बन जायेगी। उस में सार्थकता नहीं रहेगी। आध्यात्मिक जो प्राण है वह इसमें से निकल जाएगा। तो अपना यह वक्तव्य ब्रह्मचारियों को, विज्ञानवेत्ताओं को और आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ताओं को दिया और अपने आसन पर विद्यमान हो गये, मुनिवरो! देखो, इतने में उस सभा में उपस्थित होने वाले ब्रह्मचारिओं से यह वाक् उच्चारण किया।

ब्रह्मचारी सुकेता का आध्यात्मिकवाद पर विचार

तो मुनिवरो! देखो, सबसे प्रथम ब्रह्मचारी सुकेता उपस्थित हुए। उन्होंने कहा आज्ञा हो तो मैं कुछ चर्चाएँ प्रकट करूँ? उन्होंने कहा–आज्ञा है। आज्ञा प्राप्त हो गयी, तो ब्रह्मचारी सुकेता ने यह कहा कि यह जो आध्यात्मिकवाद है, यह जो आत्मा का विषय है यह बड़ा गहन विषय है। जब तक मानव अपनी अन्तरात्मा के ऊर्ध्व रूपों को नहीं जानता। जैसे हमारा मानवीय शरीर है, इस मानव शरीर की जो वृत्तियाँ हैं उन सबका जब तक हम साकल्य बनाना नहीं जानते तब तक हम आध्यात्मिकवाद में सफलता को प्राप्त नहीं कर सकेंगे।

मुनिवरो! देखो, उन्होंने साकल्य की चर्चा की। उन्होंने कहा–हमारे यहाँ जो ज्ञानेन्द्रियाँ कहलाती हैं इन ज्ञानेन्द्रियों का साकल्य बनाया जाये और साकल्य बना करके जैसे यज्ञशाला में यजमान सपत्नी विद्यमान हो करके नाना प्रकार के पदार्थों का साकल्य बना करके हूत करते हैं अग्नि उन्हें निगल जाती है, विभाजन कर देती है इसी प्रकार हमारी जो मानवीयता है उस काल में ऊँची बन सकती है जब कि इन्द्रियों का साकल्य बनाया जाये और बनाकर के जो ज्ञानरूपी अग्नि प्रदीप्त होती है उस अग्नि में आहुति दी जाये। उस अग्नि में हूत किया जाये। यही एक महानता की ज्योति कहलाती है। विचार केवल यह है कि ब्रह्मचारी ने कहा है कि प्रत्येक इन्द्रियों का जो विषय है, जैसे जिह्वा का विषय रस है, श्रोतों का विषय शब्द है, और नेत्रों का विषय रूप है, प्राण का विषय सुगन्ध है त्वचा का विषय प्रीति है। इसी प्रकार मुनिवरो! देखो, इद्रियों का जो विषय है, उन्ही विषयों के साकल्यों को एकत्रित करके हमें याग करना है। इसे ही आध्यात्किवाद कहते हैं। जब इन का साकल्य बन करके ज्ञान रूपी अग्नि प्रदीप्त हो जाती है तो **'ज्ञानं ब्रह्मः अग्नेः ब्रह्मः'** वह मानव परमात्मा का दर्शन करने के योग्य हो जाता है।

इतना वाक्य कहकर के ब्रह्मचारी अपनी स्थली पर विद्यमान हो गये। श्वेताश्वेतर ऋषि ने कहा, आओ, कोई प्रश्न करने वाला या इसके ऊपर टिप्पणियाँ अथवा विचार देने वाला हो, आध्यात्मिकवाद के ऊपर। तो ब्रह्मचारी कवन्धी उपस्थित हुए और उन्होंने मुनिवरो! देखो, कहा कि यह जो

आध्यात्मिकवाद की चर्चाएँ चल रही हैं। आध्यात्मिकवाद किसे कहते हैं? आध्यात्मिकवाद, हमारे यहाँ चार प्रकार की वृत्तियाँ कहलाती हैं सबसे प्रथम धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष कहा जाता है। यह चार वाक्य हमारे यहाँ माने गये हैं।

धर्म की व्याख्या

तो मुनिवरो! देखो, सबसे प्रथम धर्म है, हमारे यहाँ धर्म किसे कहते हैं? धर्म के सम्बन्ध में भिन्न–भिन्न प्रकार की विचार धाराएँ हैं। कोई कहता है कि धारण करने का नाम धर्म कहा जाता है कोई कहता है कि धर्म वह है कि जो भी हम अपने जीवन में क्रिया–कलाप करें, उस में धर्म होना चहिए। धर्म किसे कहते हैं? जो इन्द्रियों को, मन को प्रियता में लाने वाला हो। जिस वाक्य के उच्चारण करने में मानव को शर्{ हो अथवा लज्जा हो, उस वाक्य को जो उच्चारण करता है वह अधर्म है। जिस वाक्य के उच्चारण करने में न शर्{ हो, न लज्जा हो और ऊर्ध्वा में एक–सा बना रहता है उस का नाम धर्म कहा जाता है। ऐसा ब्रह्मचारी कवन्धी ने कहा। मुनिवरो! देखो, पुनः से कहा कि अर्थ का अभिप्राय यह है कि द्रव्य होना चाहिए। द्रव्य की चर्चा आयी, तो अर्थ कहते हैं द्रव्य को। जैसे हमारे यहाँ विद्युत का प्रकाश होता है जैसे ब्रह्मचारी विद्यालय में अध्ययन करता है तो धर्म तो उस का ब्रह्मचर्य हो गया और अध्ययन उस का अर्थ हो गया है।

अर्थ की विवेचना

तो मुनिवरो! देखो, अर्थ का अभिप्राय क्या है कि यह जो प्रकृति है, इस का नाम अर्थ है, इस प्रकृति का नाम द्रव्य कहा जाता है। इस प्रकृति का जितना भी मूल ग्रहण विषय है उन विषयों को वह अपने में अध्ययन करता है और अध्ययन करता हुआ वह उनका विभाजन करता है। मुनिवरो! देखो, उस अर्थ को धर्म से पिरोया हुआ होना चाहिए। शर्{, लज्जा से वह प्रकृतिवाद पिरोया हुआ होना चाहिए। जिस से वह अर्थ वास्तव में अर्थ के रूप में परिणत हो जाये। अर्थ कहते हैं बेटा! द्रव्य को। द्रव्य पृथ्वी से मिलता है। यह पृथ्वी प्रकृति का एक मूलक माना गया है। यह द्रव्य, प्रकृति ही कही जाती है, प्रकृति से द्रव्य को ले करके धर्म में लगाता है। उसी अर्थ को धर्म में पिरो देता है तो वह याग कर रहा है। जो उस द्रव्य के चार विभाग करता है, जैसे उन्होंने एक युक्ति प्रकट की

जीवन के चार भाग

मुनिवरो! देखो, एक समय मनुवंश के राजा सोमवृत्तिका भ्रमण करते हुए भयंकर वन में पहुँचे। भयङ्कर वनों में दृष्टिपात किया तो एक मानव गान गा रहा है और वह गान बड़ा प्रिय लग रहा है। जब वह गीत–उद्गीत गा रहा है तो राजा मुग्ध हो गया। तो बेटा! राजा ने उससे जाकर के कहा, जब उस का गान समाप्त हो गया कि तुम गान क्यों गा रहे हो? इस भयङ्कर वन में तुम्हारी मधुर ध्वनि को कौन श्रवण कर रहा है? तो मुनिवरो! देखो, वह कहता है कि मैं गान गा रहा हूँ क्योंकि मैं प्रसन्न रहता हूँ। राजा ने कहा, प्रसन्न तो वह मानव रहता है जिसमें किसी प्रकार की विडम्बना न हो। उन्होंने कहा प्रिय! मेरे में कोई विडम्बना नहीं है? उन्होंने कहा–तो उच्चारण करो कैसे विडम्बना नहीं है? उन्होंने कहा–प्रभु! मैं प्रातःकाल से सांयकाल तक पृथ्वी के गर्भ में उद्यम करता हूँ। पृथ्वी माता की गोद में जाता हूँ और वहाँ जो भी द्रव्य मुझे प्राप्त होता है उसके मैं चार भाग बनाता हूँ। सबसे प्रथम भाग मेरा वह होता है जो यहाँ से जा करके मुझे प्राप्त होगा। वह कौन–सा है कि मैं प्रातःकालीन देवपूजा करता हूँ। अपने विचारों को वेद–मन्त्रों की ध्वनि करके मैं उस को वायु मण्डल में त्याग देता हूँ। वह द्यौ–लोक को चले जाते हैं। मेरा शब्द, मेरी ध्वनि मेरा जो क्रिया–कलाप है, जब यह शरीर त्याग करके मेरा अन्तरात्मा जायेगा, तो जो शरीर मुझे प्राप्त होगा तो वह मुझे प्राप्त हो जायेगा।

मुनिवरो! देखो, एक भाग मेरा देवपूजा में लग गया। मेरे जो माता–पिता हैं जिस माता ने मुझे अपने गर्भ में धारण करके मुझे पनपाया है, अपने विचार दिये हैं। अपनी विद्याएँ अध्ययन की हुई मुझे प्रदान की हैं, लोरियों का पान कराया है उस लोरियों में मैंने अपने जीवन को पनपाया है, अपने जीवन की धारा को बनाया है माता लोरियों का पान कराती है, दर्शनों का अध्ययन कराती है और दर्शनों का अध्ययन करके माता ने मुझे सुयोग्य बनाया है, आज मैं एक भाग उनके लिये देता हूँ। जिससे वह अपने में महान बनते हुए किसी के आश्रित न हो सकें।

मुनिवरो! देखो, तीसरा जो मेरा भाग है वह ऐसा है जो मैं अपने उदर की पूर्ति करता हूँ उदर की पूर्ति करने में मै सहायक बना रहता हूँ। और चतुर्थ जो मेरा भाग है वह मैं राष्ट्र को देता हूँ क्योंकि द्रव्य से राष्ट्र भी चलना चाहिए। राष्ट्र का भाग मेरे क्रिया–कलापों का भाग, माता–पिता का भाग और यह जो याग इत्यादि कर्म हैं मेरी वाणी उद्गीत गाती हुई द्यौ–लोक में प्रवेश कर जायेगी। वह मुझे आगे के लिये प्राप्त होगा। यह चार भाग मैंने अपने जीवन के बनाए हैं।

मुनिवरो! देखो, चार भागों से जीवन पवित्र बनता है। क्योंकि मैं गान गाता हूँ, मैं किसी का ऋणी नहीं हूँ। जो संसार में ऋणी होते हैं वह गान नहीं गा सकते। जो ऋणी नहीं होते, वह प्रभु का गान गाते हैं। प्रभु की महिमा को निहारते रहते हैं। इस प्रकार जो अपने क्रिया–कलापों को बनाता है, वह एक महान कहलाता है। मुनिवरो! देखो, राजा बहुत प्रसन्न हुए। राजा ने कहा वास्तव में इस का गायन पवित्र है। ब्रह्मचारी कवन्धी ने कहा कि इस प्रकार मानव को अपने जीवन को बनाना चाहिए। उस के चार भाग होने चाहिए। चार भागों में मानव जब विभक्त हो जाता है तो उसमें किसी प्रकार की विडम्बना नहीं रहती। विडम्बना वहाँ होती हैं जहाँ मानव विभक्त क्रिया को अपने से दूरी कर देता है। इस प्रकार उच्चारण करके बेटा! ब्रह्मचारी कवन्धी ने कहा–ऐसा जो अर्थ है, वहीं अर्थ काम में मानव को परिवितिर्त कर देता है। मेरे प्यारे! देखो, धर्म, अर्थ और काम की प्रतीति आती है।

काम की विस्तृत व्याख्या

मुनिवरो! देखो, काम किसे कहते हैं? प्रत्येक मानव काम की उस आभा में, आचार्यों ने काम के सम्बन्ध में भिन्न–भिन्न प्रकार के विचार दिये हैं। वेद का मन्त्र कहता है कि मानव को जो भी संसार का क्रिया–कलाप किया जाये, जो भी कर्म किया जाये उस को ईश्वरीय आधार पर त्याग देना चहिये, एक सिद्वान्त तो यह कहता है। दूसरा विचारवादी ये कहते हैं कि यह जो काम है यह संसार में जितना भी क्रिया–कलाप है आगे सन्तान को सुयोग्य बनाना है, पत्नी के सहित रहना है, सन्तान को जन्म देना है, ये सब काम की कोटि में आता है। एक विचारवादी यह कहता है कि जितना भी तुम कर्म करो, उस में कर्त्तव्यवाद रहना चाहिए। कर्त्तव्यवाद की वेदी ही संसार में काम में परिवर्तित होती है। एक माता–पिता वह अपने में सन्तान को जन्म देना चाहते हैं, पुत्रेष्टि याग करना चाहते हैं, तो वह पुत्र की इच्छा से जब काम प्रवृत्ति में प्रवेश करते हैं तो उनका काम सार्थक बन जाता है। उसी प्रतिक्रिया में जब अति आ जाती है तो वह अति ही पाप का मूलक बन करके रहती है। आगे चल कर वह काम में परिणत होते हैं।

ब्रह्म याग

मुनिवरो! देखो, कहीं गोष्ठियाँ हो रही हैं, कहीं याग का कर्म किया जा रहा है। कहीं पृथ्वी में उद्यम किया जा रहा है। तो कोई बेटा! पृथ्वी के गर्भ में प्रवेश हो करके नाना प्रकार के खनिज को पान कर रहा है, खाद्य को जान रहा है, रत्नों को जान रहा है। मुनिवरो! देखो, परमाणुवाद का जो आदान–प्रदान हो रहा है, स्वर्ण इत्यादि धातुओं का निर्माण भी एक काम प्रवृत्ति कही जाती है। मानव विज्ञान की आभा में परिणत हो जाता है। वही व्यक्ति प्रातःकालीन ब्रह्म मुहूर्त में आ करके परमात्मा का चिन्तन करता है, ब्रह्म की सृष्टि को निहार रहा है, ब्रह्माण्ड को निहार रहा है, एक–एक परमाणु को निहार रहा है, एक–एक जीवाणु को निहार रहा है। माता अपने पुत्र के लिये ज्ञान की उद्गमता प्रकट कर रही है और कहती है कि पुत्र! आओ! ब्रह्मयाग करेंगे।

ब्रह्मयाग का अभिप्रायः क्या, कि ब्रह्म का चिन्तन करना, एक–एक स्थली पर ब्रह्म को दृष्टिपात करना, वह ब्रह्मयाग कहलाया जाता है। उसके बाद देव–पूजा करनी है, देवपूजा में परिणत होना है। वह काम की कोटि में आता है। विचार विनिमय क्या? विचार के बिना काम नहीं होना चाहिए और काम में जब स्वार्थपरता आयेगी, भोग की परता आ जायेगी तो उसी समय वह काम मानव को विनाश के मार्ग पर ले जायेगा जब काम इस प्रवृत्ति से करते हैं कि यह मेरा कर्त्तव्य है, कर्त्तव्यवाद की वेदी है।

काम की विविध स्थितियाँ

मुनिवरो! देखो, एक समय सुधन्वा ऋषि ने यह कहा–प्रभु! यह काम क्या है? उन्होंने सहज उत्तर दे दिया कि कर्म किये जाओ, उस में आस्था न करो। उस को मन में, विचारों में न लाओ, कर्म किये चले जाओ। ईश्वर के नियम के आधार पर त्याग करके वह कर्म, काम की प्रवृत्ति कहाँ ले जायेगी? एक यागी, एक साधक अपनी ज्ञानेन्द्रियों को जानता है, कर्म इन्द्रियों के क्षेत्र में चला गया है पाँचों प्राणों में, मन, बुद्धि, चित्त, अह{ार में लगा हुआ है, वह क्रिया–कलाप करता–करता बहुत दूरी चला गया है। कहाँ चला गया है? वह प्रातःकाल अपने प्रभु का स्मरण करता है, प्राणायाम करता है। मूलाधर से ले कर के नाभिचक्र से समन्वय करता हुआ, हृदय स्थली, में हृदय से कण्ठ चक्र में, कण्ठ चक्र से स्वादिष्ट चक्र में और चक्रों में गति करता हुआ वह त्रिवेणी में स्नान करता है। त्रिवेणी का स्नान करके वह ब्रह्मरन्ध्र में आत्मा को ले जाता है। इसके बाद अमृत का एक बिन्दु आता है, उसको योगीजन पान करता हुआ बिन्दु के रूप में ला करके, अमृत जान कर के उस का पान कर रहा है। वह कर्म करता हुआ कहाँ चला गया। है? वह ब्रह्माण्ड को दृष्टिपात करने लगा है। अपने अन्तर्हृदय में ब्रह्मरन्ध्र में ब्रह्माण्ड का दृष्टिपात करने लगा है।

विचार–विनिमय क्या? मेरे पुत्रो! मैं तो भयंकर वन में चला गया हूँ। यह तो बड़ा विचारों का वन है। ब्रह्मचारी कवन्धी कहते हैं, वह काम की प्रवृत्ति में अपने को ले जाता हुआ वह परमात्मा के राष्ट्र में चला गया है। जहाँ रात्रि नहीं होती। प्रकाश ही प्रकाश रहता गया है और उस प्रकाश में वह रत हो गया है। आत्मा को ले गया है। द्वितीय रूप का एक काम है कि वह प्रातःकालीन जल से पुरोक्षण करता हुआ कर्त्तव्यामि करता हुआ, मार्जन करके सन्ध्या की गोद में चला गया है।

प्रभु से सन्धि

मुनिवरो! देखो, सन्ध्या किसे कहते हैं? अपने और प्रभु के मध्य में जो विच्छेद हो गया है उससे हमें सन्धि करनी है जैसे रात्रि और दिवस सन्ध्या के रूप में सन्धि करते है जैसे रात्रि और दिवस सन्ध्या के रूप में सन्धि परिणत हो जाते हैं। प्रातःकाल की सन्धि होती है तो रात्रि के रूप में परिणत हो जाती है। जो योगीजन, जो साधक हैं वह ध्यानावस्थित होते हैं, वह रात्रि को दिवस स्वीकार करते हैं और दिवस को रात्रि स्वीकार करते हैं। रात्रि–दिवस को ले करके वह प्रभु से सन्धि कर लेते हैं। अपने प्रभु से भी न करो, तो मन और प्राण दोनों की सन्धि हो जाती है। प्रकृति की और प्राण की जो गति है दोनों की सन्धि हो जाती है। जब दोनों की सन्धि होती है तो एकोकी आत्मा मोक्ष की पगडण्डी को ग्रहण कर लेती है।

मोक्ष प्राप्ति के सहज उपाय

तो मेरे प्यारे! विचार विनिमय क्या हैं? ब्रह्मचारी कवन्धी ने कहा–महाराजा अश्वपति की सभा में कि मेरे विचार में यह आता है कि सबसे प्रथम धर्म, अर्थ, काम के पश्चात्, जब काम की निवृत्ति हो जाती है, तो बुद्धि से वह विचारता है कि यह संसार है। परन्तु मेघावी में जब प्रवेश करता है तो विचारता है कि यह एक दूसरे में परिवर्तित हो रहा है। इस संसार को जान करके वह बुद्धि, मेधा और ऋतम्भरा में प्रवेश करता है, काम के क्षेत्र को जान करके सिमट करके एक स्थली पर स्थिर हो जाता है। स्थिर हो करके बुद्धि, मेधा, ऋतम्भरा, प्रज्ञावी में वह प्रभु का दर्शन करता है।

तो विचार विनिमय क्या? मुनिवरो! देखो, भिन्न–भिन्न प्रकार की आभाओं में जब मैं नियुक्त होता हूँ तो विचार आता है ऋषि–मुनियों का वह जीवन, जिस में आध्यात्मिकवाद की एक आभा निहित रहती है। ब्रह्मचारी कवन्धी यह वाक्य उच्चारण करके कि यह जो काम है यह मानव को यौगिकवाद में ले जा करके, योग के क्षेत्र में परमात्मा के ब्रह्माण्ड का दर्शन करके, परमात्मा का उस में दर्शन करता है और उस के पश्चात जब काम की प्रवृत्तियाँ समाप्त हो जाती हैं, तो उसमें मौन हो जाता है, जान लेता है कि यह काम क्या है, इसके पश्चात वह बेटा! प्रभु का दर्शन करके मोक्ष की पगडण्डी को ग्रहण कर लेता है। ब्रह्मचारी कवन्धी यह वाक्य उच्चारण करके अपनी स्थली पर विराजमान हो गये।

अध्यात्म पर चाक्राणी गार्गी के विचार

मुनिवरो! देखो, उसके पश्चात चाक्राणी गार्गी उपस्थित हो गई। चाक्राणी गार्गी ने कहा हे ऋषिवर! दोनों ब्रह्मचारियों ने अपना वक्तव्य दिया है। वह तो मुझे बहुत प्रिय लगा है। मेरा विचार तो यह है कि जो मानव आध्यात्मिकवाद में प्रवेश होना चाहता है आध्यात्मिकवादी बनना चाहता है या राजा अपने राष्ट्र को आध्यात्मिकवादी बनाना चाहता है तो आध्यात्मिकवाद में राष्ट्र की आवश्यकता नहीं होती। उन्होंने अपना वाक्य प्रकट किया कि जो आध्यात्मिकवादी राजा होते हैं उन्हें राष्ट्र की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि राष्ट्र जो होता है वह अनुशासन में है। राष्ट्र उसे कहते हैं जहाँ चरित्र की रक्षा की जाये, चरित्र को ऊँचा बनाया जाये और जहाँ एक दूसरे पर शासन की प्रवृत्तियाँ नहीं रहतीं। चाक्राणी ने यह अपना वक्तव्य दिया।

मुनिवरो! देखो, उन्होंने इसका विश्लेषण जानना चाहा। उन्होंने कहा आध्यात्मिकवादी राजा जब बन जाते हैं तो वहाँ राष्ट्रीय प्रवृत्ति नहीं रहनी चाहिए। राष्ट्र तो रहना चाहिए परन्तु शासन की प्रवृत्ति न रहे। राजा का आध्यात्मिक विचार बना रहे परन्तु प्रजा पर अनुशासन करने कि प्रवृत्ति न रहे। प्रजा पर अनुशासन करने की प्रवृत्ति राजा की बनी रहेगी तो वह राष्ट्र का पालन नहीं कर सकता। वह धर्म और मानवता को नहीं जान सकता। एक वाक्य तो चाक्राणी ने यह कहा और द्वितीय वाक्य यह कहा कि राजा के राष्ट्र में कर्त्तव्यवाद रहना चाहिए। राजा अपने में, राजा न बनकर के अपने को महापुरूष, योगेश्वर बना ले तो प्रजा उस के अनुसार स्वतः ही अपने जीवन को बरतने लगेगी। उसमें किसी प्रकार की विडम्बना नहीं रहेगी और यदि राजा स्वतः कौशल और क्रिया–कलाप करता हुआ अन्नाद को पान करता है, वस्त्रों को धारण करता है तो प्रजा–राजा में किसी प्रकार का अन्तर्द्वन्द नहीं रहेगा। वह विज्ञान के वांगमय में और आध्यात्मिक वांगमय में अन्तिम चरण राजा का यह होगा कि वह मोक्ष को प्राप्त हो जायेगा। चाक्राणी इन वाक्यों को उच्चारण करके मौन हो गई।

आध्यात्मिकवाद का प्रारम्भ

मुनिवरो! देखो, श्वेताश्वेतर ऋषि ने कहा कि ओर कोई ऋषि अपना विचार दें। तो बेटा! महर्षि सोमकेतु मुनि महाराजा उपस्थित हुए और कहा कि हमें अपने विचारों में यह लाना है कि आध्यात्मिकवाद किसे कहते है? उन्होंने एक वाक्य कहा कि आध्यात्मिकवाद उसे कहते हैं जहाँ यह भौतिकवाद जितना भी यन्त्रवाद है, परमाणुवाद है, विज्ञानवाद है, प्रकृतिवाद है, जहाँ इन वादों का समापन हो जाता है वहाँ से आध्यात्मिकवाद का प्रारम्भ होता है। इसकी मीमांसा करते हुए मुनिवरो! देखो, सोमकेतु ऋषि ने यह कहा कि यह जो आध्यात्मिकवाद है, प्रत्येक इन्द्रियों का जो विषय है जैसे हमारी चौबीस वृत्तियाँ कहलाती हैं इनमें सर्वत्र प्रकृतिवाद निहित रहता है। जैसे दश प्राण है, दश इन्द्रियाँ हैं मन, बुद्धि, चित्त और अह{ार है इन्हीं में यह प्रवृत्त रहता है और जितना प्रकृतिवाद है, भौतिकवाद है यह अन्तःकरण चतुष्टय तक सीमित रहता है। जहाँ यह समाप्त हुआ वहाँ, केवल आत्मा रह जाता है।

तो मुनिवरो! आत्मा का विज्ञान यहाँ से प्रारम्भ होता है। सोमकेतु मुनि महाराजा यह विचार देकर मौन हो गये।

मुनिवरो! देखा, इससे आगे की चर्चा मैं कल प्रकट करूँगा। आज का वाक् यह क्या कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुण–गान गाते हुए इस संसार सागर से पार हो जावें। यह है बेटा! आज का वाक्, आज का वाक् अब समाप्त। अब वेदों का पठन–पाठन होगा।

23 मार्च 1986, ताजपुर

मृत्युंजयी बनने की सहज साधना

जीते रहो!

देखो, मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेद–मन्त्रों का गुण–गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद–मन्त्रों का पठन–पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परगतों से ही उस मनोहर वेद–वाणी कर प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का गुण–गान गाया जाता है। क्योंकि जितना भी ये जड़ जगत् अथवा चैतन्य जगत हमें दृष्टिपात आ रहा है उस सर्वत्र ब्रह्माण्ड के मूल में प्रायः वो मेरा देव दृष्टिपात आ रहा है। मानवीयत्व में, सदैव मानव अपनी मानवता का दर्शन करता रहा है। परम्परागतों से ही एक–एक वेद मन्त्र के शब्द के ऊपर अपनी मानवीयता और प्रायः प्रभु से मिलान करता रहा है। क्योंकि सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके वर्तमान के काल तक नाना प्रकार के आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता हुए हैं।

मृत्युंजयी बनने की आकांक्षा

परन्तु मुनिवरो! देखो, उन आध्यात्मिकवेत्ताओं का एक ही मन्तव्य रहा है कि मानव को मृत्युंजयी बनना चाहिए। संसार में कोई प्राणी यह नहीं चाहता कि मेरी मृत्यु हो जानी चाहिए। प्रत्येक मानव का एक ही मन्तव्य रहा है कि मैं मृत्युंजयी बन जाऊँ और मेरी मृत्यु नहीं होनी चाहिए। क्योंकि मानव स्वाभाविक एक आभामयी में निहित होता रहा है, एक–एक वेद मन्त्र के ऊपर अन्वेषण करता रहा है। प्रत्येक मेरी पुत्री मानो ममत्व को जो धारण करने वाली है उसके ममत्व का एक ही मन्तव्य रहा है कि मृत्युंजयी बनना है। मानो अपने पुत्र का पालन करती हुई ममत्व को धारण करती हुई वह यह चाहती रहती है कि तेरा और तेरे पुत्र का विच्छेद नहीं होना चाहिए। गुरु और शिष्य दोनो अपनी–अपनी स्थली पर विद्यमान हैं। दर्शनों का चिन्तन चल रहा है। मानवीय दर्शन अपने में भास रहा है। परन्तु उनकी भी यही उत्कट इच्छा रहती है कि हमारा विच्छेद नहीं होना चाहिए। मेरे प्यारे! एक ही नहीं, संसार का जितना भी प्राणी मात्र है वह मृत्युंजयी बनने के लिये इस संसार में आया है और उसे मृत्युंजयी बनना है। तो मेरे प्यारे! यह वाक्य तो हमारे यहाँ सार्वभौम सिद्ध हुआ कि कोई भी प्राणी मृत्यु के आँगन में जाना नहीं चाहता है।

मृत्युंजय पर विचार

परन्तु आज विचार आता है, वेद का मन्त्र कहता है कि मृत्युंजयी बनना है तो कैसे? जैसे राजा जनक की सभा में नाना ऋषिवर विद्यमान है और उनका एक ही मन्तव्य रहा कि हमारा यह जो ब्रह्मवेत्ताओं का समाज एकत्रित हुआ है, उनका एक ही मन्तव्य है कि हम अपने ब्रह्म याग और जितने भी होता गण विद्यमान है वे सब मृत्यु से पार हो जायें। एक ही सभा नहीं यह तो राजा जनक की सभा रही, परन्तु जितने भी विज्ञानवेत्ता हुए हैं अथवा जितने भी उसमें ब्रह्मवेत्ता, आत्मनिष्ठ, मानो आत्मा के ऊपर चिन्तन करने वाले, प्रत्येक मानव यही चिन्तन करता है, कि वेद के मन्त्र को विचारा जाये और चिन्तन और मनन करते हुए हम वास्तव में मृत्यु से पार हो जाये। तो मेरे प्यारे! यह वाक्य बड़ा विचित्र है कि प्रत्येक प्राणी भी यही चाहता है कि मैं मृत्यु से पार हो जाऊँ। मेरे प्यारे! एक–एक अणु को जानने वाला परमाणुवाद में होता रहा है क्योंकि विज्ञानवेत्ताओं की जो प्रतिक्रियाएँ रही हैं, उनका जो क्रिया–कलाप रहा है।

तरंगवाद

मुनिवरो! देखो, वह प्रायः ऐसा रहा है कि हम इस विज्ञान को जान करके तरंगवाद को जान करके, ऐसी तरंग को हम जानना चाहते हैं जिससे मृत्यु की ह्रासता हमारे जीवन में न हो। तो मेरे पुत्रो! यह विचार परम्परागतों से ही मानवीय मस्तिष्कों में निहित होता रहा है। नाना ऋषि–मुनियों की चर्चाएँ प्रायः मुझे स्मरण आती रहती हैं और उनमें नाना प्रकार का विचार यह आता रहा है कि मृत्यु से मानव कैसे उपराम होता है? यह मृत्यु से कैसे पार होता है? तो मेरे प्यारे! यदि हमें मृत्यु से पार होना है तो हमें मृत्यु के मूल कारणों को जानना होगा कि मृत्यु क्या है? मेरे प्यारे! इस सम्बन्ध में नाना ऋषि–मुनियों ब्रह्मवेत्ताओं के समाज में भी इस प्रकार का प्रसंग और वेद मन्त्र इस प्रकार के उद्‌धृत होते रहते हैं कि मानव यह चाहता कि मैं मृत्यु को प्राप्त होना नही चाहता। मैं मृत्युंजयी बनना चाहता हूँ। मैं विजय होना चाहता हूँ। मैं अजयमेव में रत होना चाहता हूँ। प्रत्येक मानव ही नही, सर्पराज भी यही चाहता है कि मेरी मृत्यु न हो। सिंहराज भी यही चाहता है कि मेरी मृत्यु न हो। जितना भी प्राणी मात्र है जिनमें प्राण और मन लोक की प्रतिक्रियाएँ होती रही हैं वह प्रायः यह चाहता है कि मेरी मृत्यु न हो। इस वाक्य को लेकर हमारे यहाँ नाना ऋषि–मुनि का समाज एकत्रित होता रहा है।

आत्मज्ञान पर परिचर्चा

मुनिवरो! देखो, महाराजा अश्वपति के यहाँ एक समय नाना ब्रह्मवेत्ताओं का समाज एकत्रित होता रहा और ऋषि–मुनियों के समाज में, राजा के मध्य में यह विचारा जाता रहा। महाराजा अश्वपति ने एक याग किया। हमारे यहाँ कई प्रकार के याग होते रहते हैं। जो ब्रह्मयाग है यह सर्वोपरि श्रेष्ठ याग माना गया है। देवयाग देवताओं की आभा में निहित रहने वाला है। परन्तु जो ब्रह्मयाग है, जहाँ ब्रह्मवेत्ता विद्यमान होकर के विचार–विनिमय करते हैं। एक–दूसरे को पिरोने के लिये करते रहते हैं। जैसे माता के गर्भ स्थल में शिशु होता है और वह शिशु सर्वत्र देवताओं को अपने में निहित करने वाला होता है। पंचमहाभूत परमाणु उसमें पिरोये जाते हैं और सर्वत्र देवताओं का ध्यान हो जाता है। तो मुनिवरो! देखो, परिणाम क्या? हमारे यहाँ ब्रह्मयाग सर्वश्रेष्ठ माना गया है। जहाँ ब्रह्मयाग की चर्चा करते हुए आदि ऋषियों ने अपना मन्तव्य दिया है मैं उस क्षेत्र में तुम्हें ले जाना चाहता हूँ। महाराजा अश्वपति ने अश्वमेघयाग में महर्षि प्रवाहण, महर्षि दालभ्य महर्षि शिलक, महर्षि रेणकेतु, ब्रह्मचारी गाहर्पथ्य, श्वेताश्वेतर और भी नाना ऋषिवर विद्यमान थे । उस सभा में नाना प्रकार का विचार–विनिमय हो रहा था, ब्रह्मयाग के ऊपर यह चर्चाएँ चलीं। वहाँ महाराजा अश्वपति ने उपस्थित होकर के कहा कि महाराज! हम सब यहाँ इसलिये विद्यमान हैं कि हम मृत्यु से पार होना चाहते हैं, हम मृत्युंजयी बनना चाहते हैं। मानो कोई न कोई मार्ग यह जो राष्ट्र है यह सर्वत्र मृत्युंजयी बन जाये। उस सभा में नाना ब्रह्मवेत्ता विद्यमान थे। उन ब्रह्मवेत्ताओं में यह प्रसंग आया कि हम आत्मा को जानते रहें जो हमारे शरीरों में भास रहा है। उसको हम जानें। उस को जानने से ही हम मृत्युंजयी बन सकते हैं। महर्षि प्रवाहण ने कहा कि आत्मा की प्रेरणा है या कोई और प्रेरणा है जो मृत्युंजयी बनने के लिये प्रेरित कर रही है। इसमें ऋषियों ने कहा कि आत्मा तो सन्निधान मात्र है। सन्निधान हुआ तो परमाणु अपनी–अपनी आभा में गति करना प्रारम्भ कर देते हैं और सन्निधान मात्र से ही जो मन है प्रकृति की वृत्तियों में रत रहने वाला, वह आत्मा के प्रकाश से मृत्यु को प्राप्त होना चाहता है। तो

ऋषियों ने यह कहा कि यह जो मन है यह जड़ पदार्थ है, यह प्रकृति का सूक्ष्मतम तन्तु है तो यह मृत्युंजयी कैसे बनना चाहता है? तो मेरे प्यारे! वहाँ ऋषियों ने कहा कि मनस्तव भी प्रकृति का तत्त्व है परन्तु यह जो मनस्तव व **'ब्रह्मवाचो देवा'** यह अपने में अभ्योदय हो रहा है। तो इस सम्बन्ध में ऋषियों ने यह कहा कि ज्ञान होने का नाम मृत्युंजयी कहलाता है।

ज्ञान

मुनिवरो! देखो, मानव को ज्ञान होना चाहिए। विचार आया कि यह ज्ञान क्या पदार्थ है? ज्ञान किसे कहते हैं? तो विचार आया कि सत्य को अपने में धारण करना, अपने में अपनाने का नाम ज्ञान है। तो विचार आया कि सत्य क्या है जिसको अपने में धारण करना है। मेरे प्यारे! सत्य उसे कहते हैं जो अन्तरात्मा को प्रिय लगता हो। अन्तरात्मा जिसे प्रियता में लाना चाहता हो, उसी का नाम सत्य है। इसीलिये उस सत्य को अपनाना ही मानो आत्मा की प्रेरणा को स्वीकार करना है। इसीलिये प्रसंग से सिद्ध हुआ। कि हमें आत्मा की पुकार को अपने में स्वीकार करना चाहिए। आत्म याग करना चाहिए। आत्मा का याग वह कहलाता है जो आत्मा की प्रेरणा को स्वीकार करता हुआ अपने में उद्बुद्ध हो जाता है। वही प्रकाशमयी मानो मृत्युंजयी बनने का एक मार्ग है। जैसे प्रातःकालीन ऋषि–मुनियों ने कहा है कि हमें प्रातःकालीन ब्रह्म का चिन्तन करना है। उसके पश्चात देवयाग में परिणत होना है। नाना प्रकार के यागों में परिणत होना हमारे अन्तर्हृदय का क्रिया–कलाप माना गया है। उसी क्रिया–कलापों से हम महान और पवित्र बनकर के मेरे पुत्रो! उस सागर से पार हो जाते हैं।

मृत्यु

मुनिवरो! देखो, इस सम्बन्ध में जहाँ यह वाक्य आया कि **'मृत्युं ब्रह्मः'** महाराजा अश्वपति के यहाँ ऋषि–मुनिओं की सभा में यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि मृत्यु क्या है? मृत्यु के सम्बन्ध में महर्षि प्रवाहण ने यह कहा कि मेरी माता तो यह कहा करती थी कि बाल्यकाल में जब उनके चरणों की वन्दना करते थे तो माता यह कहा करती थी कि संसार में मृत्यु कोई वस्तु नहीं होती। यह मृत्यु तो अज्ञान है। इसलिये अज्ञान को त्यागना, ज्ञान में आना, प्रकाश में रत होने का नाम ही जीवन है और मृत्युंजयी बनना है। मेरे पुत्रो! जब यह वाक्य उन्होंने प्रकट किया तो आगे यह प्रसंग आया कि वेद की आख्यायिका कहती है कि मृत्यु अपने में कोई मृत्यु नहीं है। ज्ञान और कर्म में रत रहना, ज्ञान की प्रतिभा में अभ्युदय होना अपने को ही मानो एक प्रकार की आभा कहा जाता है।

मुनिवरो! देखो, ज्ञान किसे कहते है? मुनिवरो! एक राजा थे, मनुवंश के। राजा वेतांग मनु कहलाते थे। व्रेतकेतु मुनि भी उन्हें कहते थे। व्रेतकेतु मुनि एक समय भ्रमण करते हुए भयंकर वन में चले गये। वहाँ ऋषि–मुनियों का एक समाज एकत्रित था। वहाँ यह प्रसंग चल रहा था कि हमें अपनी आत्मा को महान और प्रकाश में ले जाना चाहिए। तो राजा ने अपने में यह वाक्य स्वीकार किया, कि मुझे भी राष्ट्रीय प्रवृत्ति को त्याग करके नम्र और निराभिमानी बन करके मुझे प्रभु की गोद में जाना है। तो मुनिवरो! राजा ने वहाँ से प्रस्थान किया और अपने राष्ट्र में जब आ गये तो विचार आया कि हीरे, जवाहरात की मुद्राओं से गुथ करके एक छड़ी का निर्माण होना चाहिए। उन्होंने शिल्पकारों को आज्ञा दी कि मेरे लिये एक छड़ी का निर्माण करो। उन्होंने हीरे जवाहरातों को जड़ित करके छड़ी का निर्माण किया, वह छड़ी राजा को अर्पित कर दी। राजा उस छड़ी को लेकर के भ्रमण करते रहते थे कि मेरे राष्ट्र में महापुरूष, ब्रह्मवेत्ता हैं या नहीं?

मुनिवरो! देखो, एक समय वह भ्रमण करते हुए सांयकाल को अपने नगर को आ रहे थे। तो बेटा! वहाँ एक महात्मा रहते थे एक महापुरूष लवकेतु मुनि रहते थे। वह उनके समीप पंहुचे। उन्होंने कहा–हे ऋषिवर! आप मेरे राष्ट्र में भ्रमण कीजिये। मेरे नगर में चलिये। मेरे राष्ट्र गृह में तुम्हारा वास होना चाहिए। महात्मा ने कहा हे राजन्! जो तुम्हारे राष्ट्र में हैं, जो तुम्हारी नगरी में हैं, वही यहाँ आ जायेंगे। मैं वहाँ जा करके क्या करूँगा? उन्होंने कहा–यह तो आश्चर्य जनक है। राजा ने कहा यह छड़ी तुम्हें अर्पित करनी है जो तुमसे विशेष कोई मूर्ख हो उसे दे देना, क्योंकि तुम मूर्ख हो। मैंने तुम्हें मूर्ख की उपाधि प्रदान की है। महापुरूष ने उस छड़ी को स्वीकार कर लिया और राजा अपने राष्ट्र में चला गया। परन्तु हीरे मणियों से गुथी हुई छड़ी वहाँ सदैव रहती।

तो मुनिवरो! वह अपने में विचारते रहते, चिन्तन और मनन करते रहते कि मैं यह छड़ी किसे प्रदान करूँ? यह छड़ी मैं उसे दूँगा जो मेरे से मूर्ख हो। क्योंकि मैं मूर्ख तो राजा की नजर में हूँ। मैं प्रभु की दृष्टि में मूर्ख नहीं हूँ। मैं अपनी अन्तरात्मा की दृष्टि में तो मूर्ख नहीं हूँ क्योंकि मूर्ख और धूर्त यह दो शब्द हमारी संस्कृति के प्रतीक कहलाते हैं, अपशब्द कहलाते हैं। तो ऋषि ने अपने मन में यह विचारा कि राजा ने मुझे यह छड़ी प्रदान की है, वह इसी चिन्तन में लगे रहते कि राजा ने मुझे मूर्ख कहा है। मैं कैसे मूर्ख हूँ? मैं अन्तरात्मा के गर्भ में प्रवेश करता रहता हूँ, मैं मन और प्राण दोनों का समावेश करता रहता हूँ, दोनों का समावेश करके आत्मा के प्रकाश में जाने के लिये सदैव तत्पर रहता हूँ। तो यह क्रिया–कलाप मानो धूर्त और मूर्खों का नहीं है।

शमशान की व्याख्या

मैं शमशान भूमि के लिये तत्पर रहता हूँ। शमशान उसे कहते हैं जहाँ मानव के हृदय में शुद्ध और पवित्र भावनाएँ आती हों, जहाँ मानव के शरीर का दाह कर दिया जाता हो। जहाँ अग्नि परमाणुओं का विभाजन करती हो, उसका नाम शमशान भूमि कहा जाता है। जहाँ मानव के शरीर का, परमाणुवाद का अग्नि विभाजन करके अपने–अपने रूप में परिणत कर देती है। शरीर को यदि हम मृत्युंजयी स्वीकार कर लेते हैं तो यह भी प्रियता में दृष्टिपात नहीं आ रहा है। क्योंकि जब अग्नि में शरीर का दाह कर दिया जाता है, तो वह शव उस काल में कहलाता है जब उस में अन्तरात्मा नहीं रहता। जब आत्मा का संस्कार, आत्मा के साथ चला जाता है तो उस को हम केवल प्राण का संचार स्वीकार करते हैं, उस में प्राण ही मानो पिण्ड की स्थापना करता है। तब तक पिण्ड में प्राण है, जब तक वह पिण्ड बना रहता है और जब प्राण चला जाता है तो पिण्ड भी पिण्ड रूप में नहीं रहता। जैसे एक पर्वत है उस पर्वत में जब तक प्राण है तब तक उस पर्वत का पिण्ड बना हुआ है। परन्तु जब उस के परमाणुओं का विभाजन हो जाता है तो उस की पिण्डता समाप्त हो जाती है। इसी प्रकार मानव शरीर का जो पिण्डाकार बना हुआ है, यह पिण्ड तब तक रहता है जब तक कि इस में प्राण है, प्राण सत्ता है। प्रत्येक परमाणु में प्राण दृष्टिपात आ रहा है। मेरे प्यारे! जब अग्नि इस का विभाजन कर देती है इस प्राण को परमाणु रूप में परिणत कर देती है तो यह अपनी–अपनी आभा में निहित हो जाता है। तो उससे यह सिद्ध हुआ पुत्रो! ऋषि विचार–विनिमय करता हुआ कहता है कि जब अग्नि इस को आकार रूप में परिणत कर देती है, परमाणु रूप बना देती है तो हम उसे **'सम्भूति ब्रह्मः'** वह अपने–अपने रूप में, कारण में लय हो गया है तो यह मृत्यु नहीं रहा। इस से यह सिद्ध हो गया है कि मृत्यु अपने में कोई मृत्यु नहीं है। राजा ने मुझे मूर्ख क्यों कहा है? मूर्ख इसलिये कहा है कि मैं संसार के वैभव में परिणत नही हो रहा हूँ। ऋषि अपने में बहुत मनन करता हुआ, चिन्तन करता हुआ, बहुत समय व्यतीत हो गया। ऋषिजन योगाभ्यास करते हुए, मानो प्राण और मन को एकाग्र करते हुए वह मन के प्रकाश से दूसरे के हृदय की अन्तरात्मा का दर्शन करते रहते थे। जब वह दर्शन करते रहते थे तो राजा का शरीर और आत्मा दोनों का वृद्ध समय आने वाला था। मृत्यु की शैय्या पर राजा विद्यमान है। तो ऋषिवर ने विचारा अपने योगाभ्यास के द्वारा कि राजा मृतक होने वाला है, राजा का अन्तरात्मा इस शरीर से पृथक् होने वाला है। तो वह सीधे मणियों से गुथी हुई छड़ी को ले करके राजा के द्वार पर जा पहुँचे।

मनुवंशीय राजा वेतांग और महर्षि लवकेतु आख्यान

मुनिवरो! देखो, राजा मृत्यु की शैय्या पर विद्यमान है। अपने कुटुम्ब इत्यादि से कुछ वार्ता प्रकट कर रहे थे। राजा को दृष्टिपात करके ऋषिवर उन के समीप पहुँचे। राजा ने कहा–आईए, साधु ब्रह्मवेत्ता! यह छड़ी आपने किसी को प्रदान नही की है। उन्होंने कहा–प्रभु! मुझे मेरे से मुर्ख कोई मिला ही नहीं,

अब तुम कहाँ जा रहे हो? उन्होंने कहा भगवन! यह तो प्रतीत नहीं कि मैं कहाँ जा रहा हूँ। परन्तु मेरी यह अन्तिम यात्रा है, उन्होंने कहा–तो राजन्! इस अन्तिम यात्रा में कितनी सेना अपने साथ ले जाओगे? उन्होंने कहा–हे साधु! प्रायः मैंने तुम्हें मूर्ख कहा है। तुम वास्तव में मूर्ख वाली वार्ता प्रकट कर रहे हो। इस अन्तिम यात्रा में यह सेना साथ नहीं जाती। उन्होंने कहा–राजन्! तुम्हारा जो वंश है यह मनुवंश कहलाया गया है और मनु वंश में तुम्हीं एक ऐसे हो जिन्होने ब्रह्मज्ञान को नही प्राप्त किया है। राष्ट्र की आभा में तुम निहित रहे हो। मैं यह जानना चाहता हूँ कि तुम्हारे साथ में कितना द्रव्य जायेगा? कितना तुमने एकत्रित किया है? मानो इस वैभव में सदैव तुम निहित रहे हो। उन्होंने कहा–हे ऋषिवर? मेरे साथ में यह भी नही जायेगा। उन्होंने कहा–तो पत्नी आपके साथ अवश्य जायेगी। उसका आपके साथ बड़ा स्नेह रहा है। इस गृह को, राष्ट्र को क्रियात्मक बनाने में तुम ने एक दूसरे को सहयोग दिया है, यह तो आप के साथ जायेगा? राजा ने कहा–साधु! तुम तो मूर्ख ही रहे। इस यात्रा में यह देवियाँ भी नहीं जाती। उन्होंने कहा–भगवन्! आपके साथ जब द्रव्य नहीं जायेगा, सेना नहीं जायेंगी, और देवियाँ भी नहीं जायेंगी तो प्रभु! यह राष्ट्र तो आपके साथ अवश्य ही जाएगा। उन्होंने कहा–अरे ,मूर्ख! यह भी नहीं जायेगा। उन्होंने कहा–भगवन्! तो लीजिये, आप अपनी छड़ी को लीजिये और यह कहा–कि मेरे से मूर्ख तो तुम हो संसार में, जो प्रभु! आपके साथ जाता, वह तुम ने कमाया नहीं, वह तुमने जाना नहीं और जो तुमने जाना है वह तुम्हारे साथ नहीं जा रहा है। यह छड़ी तुम्हारी है। यह अपनी स्वीकार कर लीजिये।

ब्रह्मज्ञान

मुनिवरो! देखो, राजा अपने आसन से उतिष्ठ हो गये और ऋषि के चरणों को स्पर्श करते हुए बोले–हे ऋषिवर! यह तुम्हारा वाक्य यथार्थ है। जो तुमने कहा है कि मेरे साथ वास्तव में ब्रह्मज्ञान जाता, वह मैंने स्पर्श नहीं किया। मैंने ब्रह्म का चिन्तन नहीं किया है। मैं राष्ट्रवाद की आभा में निहित रहा। तो मेरे प्यारे! राजा ने कहा–हे राजन्! इस अन्तिम यात्रा में अब ब्रह्मज्ञान का क्या बनेगा? उन्होंने कहा–भगवन्! मेरा अन्तरात्मा चित्त के मण्डल में तो प्रवेश होना ही है। गुरु कोई ज्ञान का उपदेश दे दीजिये। उन्होंने कहा–हे राजन्! यह जो तुम्हारा शरीर है इस का परमाणु–परमाणु पृथक् होना है। अपने–अपने कारण में यह लय होना है। अपनी–अपनी आभा में यह निहित होना है। मानो यह तो प्रायः होना है। हे राजन्! ब्रह्मज्ञान यही है कि अपने मनस्तव और प्राण की आभा को एक सूत्र में लाकर के इस आभा के प्रकाश में मृत्युंजयी बनने का प्रयास करो। मृत्युंजयी वही बनता है जो अपनी अन्तरात्मा को जान लेता है कि अन्तर्हृदय में क्या विद्यमान है किसकी चेतना से यह शरीर चेतनित हो रहा है? चेतना में रत रहता है? उसी को जानने का तुम प्रयास करो, तो तुम मृत्युंजयी बन जाओगे। मेरे प्यारे! मुझे कुछ ऐसा स्मरण है बेटा! जहाँ राजा मृत्यु की शैय्या पर विद्यमान था, लगभग चालीस दिवस तक प्राण शरीर से निकला नहीं, प्राण और शरीर दोनों अलग नहीं हुए।

ब्रह्म–सूत्र

मानो चालीस दिवस तक ऋषि का ब्रह्मयाग चलता रहा। ब्रह्म का चिन्तन चलता रहा कि हे राजन्! एक–एक परमाणु जो तुम्हारे शरीर में क्रियाकलाप कर रहा है यह जिस सूत्र से पिराया हुआ है उस सूत्र को जानने का प्रयास करो। राजा कहता है कि महाराज! वह सूत्र क्या है? वही सूत्र शरीर में ब्रह्मसूत्र कहलाता है जिस को जानने से मानव अपनी मानवीयता में मननशील बन करके, प्रकृति के एक, एक कण, कण को जान करके मेरे प्यारे! वह ब्रह्म के आँगन में प्रवेश हो जाता है। वह मृत्युंजयी बन जाता है। मुनिवरो! मुझे स्मरण है कि चालीस दिवस तक ब्रह्मज्ञान का उपदेश चलता रहा। ब्रह्मज्ञान की धारा प्रवाहित होती रही कि यह संसार क्या है? अपनी अन्तरात्मा को जानना है और समष्टि से व्यष्टि में प्रवेश होना है। व्यष्टि से समष्टि में जाना है और जो समष्टि में चला जाता है वह प्रत्येक इन्द्रियों के क्रिया–कलापों को जानकर के इस भवसागर से पार हो जाता है। तो राजा ने चालीस दिवस तक आत्म ज्ञान की चर्चा करते हुए, उस के पश्चात् उन्होंने प्राणायाम कर के अपने शरीर को त्यागने का व्रत किया और कहा– भगवन्! अब मुझे आत्मज्ञान हो गया है।

तो मुनिवरो! देखो, विचार विनिमय क्या कि जिस समय मानव का अन्तरात्मा शरीर से पृथक् होता है तो उस समय आत्मा का जो चिन्तन है, आत्मा का जो विचार है वह महान होना चाहिये, वह प्रभु सूत्र में पिरोया हुआ होना चाहिये जिस से वह ब्रह्मज्ञान में परिणत होता हुआ अपने में महान वृत्तियों को धारण करता हुआ मेरे प्यारे! वह मृत्युंजयी की आभा में रत हो जाये।

व्यष्टि से समष्टि में सहज प्रवेश की प्रक्रिया

तो विचार विनिमय क्या, मेरे पुत्रो! जिस मानव शरीर में, मानव वास करता है उस मानव शरीर में जो क्रियाकलाप हो रहा है बेटा! नेत्रों के द्वारा हो रहा हो, वाणी के द्वारा हो रहा हो, चाहे वह प्राण के द्वारा हो रहा हो, चाहे वह त्वचा के द्वारा हो रहा हो, इन सब का साकल्य बन करके इस को व्यष्टि से समष्टि में प्रवेश करने का नाम बेटा! ज्ञान है।

मुनिवरो! देखो, इस ज्ञान के ऊपर प्रत्येक मानव परम्परागतों से विचार–विनिमय करता रहा है। मानव अपनी मानवीयता का प्रायः दर्शन करता रहता है। मानवीयता की आभा में निहित होता रहा है जिस से मानव इस संसार सागर से पार हो जाता है। माता यह चाहती है कि मेरी मृत्यु न हो। मेरे पुत्र का मुझसे विच्छेद न हो। मेरे प्यारे! माता मल्दालसा एक वाक्य कहा करती थी, वेद की विदुषी यह कहती रहती थी, वह अपने गर्भ में आने वाली आत्मा के समीप, अपनी आत्मा का समन्वय करती रहती थी और उसे ब्रह्मज्ञान की धाराएँ अर्पित करती रहती थी और माता यह कहती थी कि जो माता यह चाहती है कि मेरे पुत्र की मृत्यु न हो, मेरा पुत्र मृत्युंजयी बन जाये तो वेद की विदुषी ने कहा है कि आत्मा का जब गर्भ में प्रवेश हो तो उस आत्मा से विवेचना और अपनी वार्ता प्रकट करनी चाहिए और ब्रह्मज्ञान को उस की अन्तःस्थली में ओत–प्रोत कर देना चाहिए।

याग द्वारा मृत्युंजयी

तो मैंने बेटा! कई काल में यह वाक्य प्रकट किये हैं। आज इतना समय आज्ञा नहीं दे रहा है। विचार केवल यह है कि मानव अपने में ब्रह्मज्ञान का चिन्तन करना, आत्मा में प्रवेश होकर के प्रातःकालीन, सायंकालीन, मध्यकालीन, किसी भी काल में जब समय पर्याप्त हो, उसी काल में अपनी अन्तरात्मा और प्रभु से मिलान होने की एक विडम्बना उस के हृदय में विस्तृत हो जानी चाहिए। जिसमें व्याप्त होकर के अपनी–अपनी आभा में रत हो जाये। यह है बेटा! आज का वाक्, आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हम परमपिता–परमात्मा की आराधना करते हुए, ब्रह्मज्ञान में परिणत होते चले जायें। राजा यह चाहता है कि मेरा राष्ट्र मृत्युंजयी बन जाये तो राजा के राष्ट्र में भिन्न–भिन्न प्रकार की ब्रह्मवेत्ताओं की सभाएँ होनी चाहिए। राजा को ब्रह्मज्ञान का उपदेश प्रजा को देना चाहिए। प्रजा और राजा दोनों मिलकर के बेटा! मृत्युंजयी बन सकते हैं। याज्ञिक पुरूष, यज्ञशाला में जब यजमान विद्यमान होता है, होताजन यह चाहते हैं कि मेरे यजमान की वाणी पवित्र बन जाये। यजमान की वाणी में ओज और तेज आ जाये तो वह प्रार्थना, वेद मन्त्रों को उच्चारण करते हैं। देवताओं के लिये स्वाहा उच्चारण करते हैं कि हे देवताओं! तुम्हें स्वाहाः हमारे स्वाहाः को प्रदान करो और यजमान को मृत्युंजयी बनाओ।

तो मेरे प्यारे! महाराजा जनक और महाराजा अश्वपति के राष्ट्र में प्रायः यह क्रिया–कलाप होते रहते थे। नाना ऋषि–मुनियों की सभा में यह विचार–विनिमय होना, तो उस समय नाना ब्रह्मचारियों, कवन्धी इत्यादियों ने यह वर्णन करते हुए कहा–कि हे राजन्! यदि तुझे अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाना है तो प्रजा को और स्वयं ब्रह्मवेत्ता बन करके, अन्नाद तेरा पवित्र हो। तेरी वाणी में पवित्रता हो। तेरी वाणी में ब्रह्म का बखान हो, तो तेरा राष्ट्र ऊँचा बनेगा। विज्ञानवेत्ता भी यही चाहते हैं, विज्ञान में जहाँ अणु और परमाणु का मिलान करते रहते हैं, वहाँ अन्तरात्मा एक अणु के रूप में अपने शरीर को प्रकाशित

करता रहता है। वह शरीर जिस से प्रकाशित होता है उस को जानना, उस को समष्टि में प्रवेश करने का नाम ज्ञान हैं, विवेक है। बेटा! उस को जानना एक हमारा कर्त्तव्य माना गया है।

आत्म प्रकाश

यह है बेटा! आज का वाक्। आज के वाक् उच्चारण करने का हमारा अभिप्राय क्या है कि प्रत्येक मानव यह चाहता है कि मृत्युंजयी बन जाये, मृत्युंजयी बनने का प्रत्येक प्राणी में चिन्तनीय एक विषय चलता रहा है। परम्परागतो से बेटा! सृष्टि के प्रारम्भ से ही संसार में उसको गम्भीर चिन्तन में लाना यही मुनिवरो! आत्मप्रकाश कहा जाता है।

तो आज का विचार अब यह समाप्त होने जा रहा है। कल समय मिलेगा तो मैं शेष चर्चाएँ कल प्रकट करूँगा। आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, ज्ञान और विज्ञान की वार्ताओं में रत रहते हुए, विवेकयुक्त अपने जीवन को बनाना है। व्यष्टि से समष्टि में प्रवेश करना है। यह है बेटा! आज का वाक्! अब शेष चर्चाएँ, मैं तुम्हें कल प्रकट करूँगा। इसके पश्चात यह वार्ता समाप्त हो जायेगी।

26.4.1986
गलहैता, मेरठ

अग्नि और सोम की व्याख्या

जीते रहो,

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद मंत्रों का पठन–पाठन किया हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वेदवाणी में उसकी प्रतिभा का वर्णन होता रहता है जो ब्रह्ममयी स्वरूप कहा जाता है। क्योंकि आज के हमारे वेद के पठन–पाठन में कुछ अग्नि सूक्तों का वर्णन हो रहा था।

अग्नि सूक्त

यह प्रातःकाल की जो अग्नि है, यह मानव के जीवन को उद्‌बुद्ध करती रहती है। यह प्रातःकाल की भव्य अग्नि सूर्य के रूप में प्रकट हो जाती है, वही तो अग्नि प्रकाश की द्योतक कहलाती है मुनिवरो! देखो, उस अग्नि का हम प्रातःकाल की पवित्र बेला में, उस अग्नि को हम अपने में धारण करते रहे हैं, जो अग्नि संसार में भासती रहती है और प्रकाश देती रहती है। अन्धकार का वह शोषक है, अन्धकार को अपने में शोषण कर लेती है। तो मुनिवरो! देखो, हम आज उस प्रातःकाल की पवित्र अग्नि के ऊपर जो हमारे जीवन की सहायक बनी हुई है, यही अग्नि भिन्न–भिन्न रूपों में हमें दृष्टिपात आती है। जब हम वनस्पति विज्ञान के समीप जाते हैं तो वनस्पति अपने में अग्नि को धारण किये हुए रहती है। अग्नि ही वनस्पति में एक सूत्र रूप से परिणत हो रही है। जितनी भी स्थावर सृष्टि है यह अग्नि के ही सूत्र में सूत्रित हो रही है। अग्नि तो प्रकाश की द्योतक है, प्रकाश को देने वाली है।

मुनिवरो! देखो, वही अग्नि काष्ठों में, जब हम काष्ठ में से अग्नि को प्रदीप्त करने का प्रयास करते हैं तो नाना प्रकार की अपनी वृत्तियों और समिधा में से अग्नि को प्रदीप्त करके, हम अपने नाना प्रकार के जो दुष्कर्म हैं, उन्हें हम शान्त करना चाहते हैं अथवा उस अग्नि में भस्म करना चाहते हैं। इसीलिये मुनिवरो! देखो, प्रत्येक मानव परम्परागतों से क्या, सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके मानव अग्न्याधान करता रहा है। उसी अग्नि को हम काष्ठों में दृष्टिपात करके समिधा के रूप में लाते हैं और उस समिधा में नाना प्रकार के और पदार्थो का मिश्रण करके उस अग्नि को हम, जो पिण्ड रूप बनी हुई है, जो एक वृक्ष के रूप में थी, वह पृथ्वी के आँगन में, गोद में आई, तो सूर्य ने उसका विजातीय जो पदार्थ हैं उसको भिन्न कर दिया है और वह अग्नि में, वही समिधा परिणत हो करके और वही **'अग्निः ब्रह्मा'** उसमें से यजमान यज्ञशाला में अग्नि का चयन करता हुआ उसके पदार्थों, उसके पिण्ड को उसमें परिणत करके उसमें से अग्नि का विस्तृत रूप बना करके वही अग्नि बेटा! साकल्य पदार्थों को लेकर वायु, अग्नि में प्रविष्ट हो जाती है।

मुनिवरो! देखो, नाना प्रकार की आभा को जन्म दे करके, नाना प्रकार की धाराओं को जन्म दे करके, वह उद्‌बुद्ध होकर के वायु मण्डल को पवित्र बनाने लगती है। तो वही पिण्ड रूप में जो अग्नि थी वही सूक्ष्म बन जाती है। वही तरंगों के रूप में परिणत हो गयी है मुनिवरो! देखो, उसमें जो नाना प्रकार का जो साकल्य है जो उसका सूक्ष्म रूप बना दिया है, उसमें **'यज्ञो आत्मा ब्रहे स्वाहा'** यजमान स्वाहा कह रहा है, और साकल्य स्वाहा में परिणत हो रहा है और अग्नि उसको उद्‌बुद्ध करके, उस स्वाहा को ऊर्ध्वा बना देती है वही अग्नि एक महान बन करके, सूक्ष्म रूप बन करके वही तो देवताओं का भोज्य होता है उसी वासना को देवता पान करते हैं और उसको पान करके वायुमण्डल में जो अशुद्ध वायु परमाणु में मिश्रित हो गये हैं उन परमाणुओं को बेटा! उस स्वाहा वाले जो शब्द हैं, स्वाहा वाले जो परमाणु हैं, वह विजातीय परमाणुओं को निगल जाते हैं और वह सजातीयों को उद्‌बुद्ध करने लगते हैं, वही अग्नि है जो परमाणुवाद में गति दे रही है, वही अग्नि है जो वायु से मिश्रित हो, तेजोमयी बना करके ऊर्ध्वा को प्राप्त करा देती है। मुनिवरो! देखो, वेद का मन्त्र हमें बहुत ऊर्ध्वा में अपनी चर्चा कर रहा है। वेदमन्त्र कहता है **'अग्नि इन्द्रो भवि सम्भवाः'** वही अग्नि है जो इन्द्र बन करके देवताओं का अधिपति बन करके देवताओं को महान बना देती है।

अग्नि की व्यापकता

तो मुनिवरो! देखो, विचार यह चल रहा था कि यह अग्नि सूक्त हमारे यहाँ वैदिक साहित्य में भिन्न–भिन्न रूप में आते रहते हैं, वही अग्नि समुद्रों में निहित रहने वाली है, वही अग्नि जब सूर्य से उस समुद्र वाली अग्नि का समन्वय होता है, तो मानव अपने अनुशासन में निहित हो करके उसी से मेघ मण्डलों की उत्पत्ति हुआ करती है और उसी से मेघों की उत्पति होकर के वही धीमी–धीमी वृष्टि का मूलक बनता है और मूलक बन करके, पृथ्वी नाना प्रकार के व्यंजनों वाली बन जाती है, नाना प्रतिभावाली बन जाती है, वही अग्नि है जो काष्ठों में रहती है, वही अग्नि जो समुद्रों में परिणत रहती है।

तर्पण, मार्जन में अग्नि

मुझे स्मरण है। एक समय बेटा! भगवान् मनु समुद्र के तट पर विद्यमान थे और वह समुद्र में स्नान क्रियाओं से निवृत्त हो करके मार्जन और तर्पण कर रहे थे। इतने में उनके द्वारा एक सुकेत नामक ऋषि आये और उनके समीप विद्यमान हो गये। जैसे ही वे तर्पण से समाप्त हुए, उन्होंने कहा–कहो, भगवन्! यह तुम क्या कर रहे थे? उन्होंने कहा–प्रभु! मैं अग्नि को उद्‌बुद्ध कर रहा था और अग्नि को कह रहा था तू तर्पण है। हे अग्नि! तू, तर्पण कहलाती है। हे अग्नि! तू मार्जन कहलाती है। यह अग्नि ही जब आपोमयी ज्योति का गठन कर देती है तो वही जल मार्जन के सुयोग्य बनता है, वही तर्पण के सुयोग्य बनता है।

तो मुनिवरो! देखो, वह जो अग्नि है वह तर्पण और मार्जन के रूप में परिणत रहती है और यह वाणी से उद्‌गीत गाया करती है और पिण्ड, आपो का मार्जन और तर्पण के रूप में वह परिणत हो जाता है। वही अग्नि है जो जल को अति शीतलता में ले जाती है, वही अग्नि जल का पिण्ड बना देती है।

जल का पिण्ड बना करके वह शीतल हो जाता है परन्तु उस पिण्ड में, उस शीतलता में अग्नि विद्यमान है, कैसी विचित्र अग्नि है? मुनिवरो! देखो, वही अग्नि जब विज्ञान के युग में, वैज्ञानिक जब अग्नि के ऊपर अन्वेषण करने लगते हैं, वही जल अग्नि में हो करके अग्नि को शान्त कर देता है। वही जब अग्नि से जल पृथक् हो जाता है, केवल वह अग्नि में, अग्नि की सूक्ष्मतम विद्युत रूप में हो जाती है, तो वही अग्नि आपो के रूप में हो करके जब अग्नि को वह स्पर्श करता है वह अग्नि अपने में सिंचित कर लेती है, वह इस आपो को सिंचन कर लेती है। वहीं अग्नि जल का पिंड बनाती है, वहीं अग्नि जल को अपने में सिंचन करने लगती है वायुमण्डल में प्रसारित कर देती है। वही अग्नि, यह जो अभ्योदय होने वाली अग्नि है, वही अग्नि को शान्त, वही जल अग्नि को प्रदीप्त कर देती है। विचार क्या **'आपो हिरण्यं ब्रह्म अग्नि'** वेद का वाक् कहता है आपो अग्नि के रूप में परिणत रहता है जब अग्नि और जल दोनों का समन्वय बनता है, तो यह जल अग्नि ले जा करके देखो, स्थावर सृष्टि का पिण्ड बना देती है, वही पिण्ड बना हुआ है और अग्नि और आपो का प्राण वायु उसमें मिश्रित हो रही है।

परमाणु विखण्डन, संश्लेषण का आधार अग्नि

मुनिवरो! देखो, वह उन परमाणुओं को वितरित करती रहती है परमाणु अपनी–अपनी स्थलियों पर वितरित होते रहते हैं वह परमाणुओं को आह्वान दे करके परमाणु उसको बलवती बना देते हैं। देखो, यह प्राणसत्ता है, वह वायु है, वह मिलन करके वृक्ष को ऊर्ध्वा में पिण्ड बना देती है। पिण्ड बना करके वही पिण्ड जब पृथ्वी पर आ जाता है उसी को विजातीय, जो अति में पिण्ड था उसको सुषुप्त बनाता है उसी को बेटा! यजमान अपनी यज्ञशाला में उसी अग्नि में से, उसी समिधा में से अग्नि का निकास करके वही परमाणुओं का शोधन करने लगती है। अशुद्व परमाणुओं को निगलने लगती हैं और शुद्व परमाणु अपने में अभ्युदय होते ही शुद्धीकरण कर देते हैं

तो बेटा! आज मैं विशाल दूरी में न चला जाऊँ यह विचारों की प्रतिभा कहलाती है। प्रत्येक पदार्थ अपने में देखो, देवत्व को धारण कर रहा है। प्रातःकाल की अग्नि तू आ, हमारे हृदयों में तेरा प्रवेश हो जा। वेद का प्रथम मन्त्र कहता है हे अग्नि! मेरे हृदय में तू समाहित हो जा जिससे मैं तेरी भाँति तेजोमयी बन जाऊँ। हे अग्नि! वृक्षं ब्रह्मा हे अग्नि! तू इसमें समाहित हो जा। तो वेद मन्त्रों के आधार पर जहाँ मैं प्रार्थना के रूप में अपनी जिज्ञासा प्रकट कर रहा हूँ वहाँ विज्ञान के वांगमय में जब प्रवेश होते हैं तो यही अग्नि है जो वायु में मिश्रित हो करके शब्द को अन्तरिक्ष में परिणत कर देती है। परमाणुवाद उस स्वाहा में गुथा हुआ है। वही परमात्मा की आभा में सूत्र बन करके, वही अपने में प्राणेश्वर बन करके, इस संसार को जागरूक कर रहा है।

मुनिवरो! देखो, विचार क्या दे रहा था? देखो, सुकेत ऋषि ने भगवान् मनु से कहा कि महाराज! आप मार्जन कर रहे हैं और तर्पण कर रहे हैं। यह मार्जन और तर्पण क्या हैं? उन्होंने कहा कि हे भगवन! मैं अपने विचारों की धारा को अन्तरिक्ष में प्रवेश करा रहा हूँ । तर्पण, शीतल जल के साथ मिश्रित हो करके मेरा जो वाक्य है वह अग्नि की धाराओं पर विद्यमान होता है, वही अग्नि की धाराएँ उसे जब द्यौ–लोक में पहुँचा देती है तो बेटा! सूर्य की किरणों के साथ, वह द्यौ–लोक में प्रवेश हो जाता है, वह अन्तरिक्ष में, अवकाश में परिणत होता हुआ वही शब्द तर्पण और मार्जन का मूल बन करके, मुनिवरो! देखो, उसे तर्पण कहते हैं। अपने को समर्पित करना, मार्जन कहते हैं मेरे हृदय में जो दुरितन हैं, विचारों में जो अशुद्धियाँ आ गयी हैं, उनको में दुरिता चाहता हूँ उनको तर्पण, मार्जन के द्वारा मैं त्यागना चाहता हूँ और उन्हीं देवताओं के द्वारा, जिन देवताओं के द्वारा प्रायः देखो, यह विचार, यह साकल्य मेरे समीप आ गया है मैं उसको दुरिता में परिणत करना चाहता हूँ, प्रभु से याचना करता हूँ प्रभु! मैं आपको ही तर्पण कर रहा हूँ आपका ही मार्जन कर रहा हूँ, मेरे हृदय में किसी प्रकार की अशुद्धियाँ न रहें क्योंकि मैं जिज्ञासु हूँ।

अग्नि और पदार्थों की सजातीयता

मैं तर्पण करने नहीं, मैं केवल यह चाहता हूँ कि यह संसार तेरे से सजातीय कहलाता है, अग्नि से सजातीय कहलाता है, विष्णु से सजातीय कहलाता है, यह बृहस्पति से सजातीय कहलाता है, यह शनि से सजातीय कहलाता है, यह **'अग्निं ब्रह्मा वाचन्नमं ब्रह्मे देवाः'** यह सोम कहलाता है, तो हे प्रभु! मैं जब यह विचारता रहता हूँ कि तू बृहस्पति में सजातीय है, विष्णु में सजातीय है, शनि में सजातीय है, और देखो, **'अग्रतं ब्रह्मा वरणस्ते'** तू, वायु, वरुण में ओत–प्रोत रहने वाला है। हे प्रभु! आप ही मेरे पितर और इन्द्र के रूप में परिणत हैं। हे भगवन्! आज ही प्रातःकाल की पवित्र वेला में अग्नि बन करके वामन अवतार के रूप में यह सूर्य उदय हो जाता है। यह वामन बन करके प्रकाश देने लगता है। अन्धकार को अपने में धारण कर लेता है, अन्धकार को अपने नीचे दबा लेता है। प्रभु! तू तो सर्वत्र विद्यमान है, किन्ही रूपों में मेरा कोई स्थल ऐसा नहीं है, कोई स्थली ऐसी नहीं है जहाँ प्रभु तुझे मैं दृष्टिपात न करूँ, जहाँ मेरे मन की प्रवृत्ति जाती है वहीं प्रभु आप विद्यमान है।

सोम–रूप अग्नि

जब मैं इन वेद मन्त्रों के ऊपर विचारता रहता हूँ ध्रुवा, ऊर्ध्वा में इन्द्र बन करके रहते हो, पितर बन करके रहते हो प्रभु, हे भगवन! तुम अग्नि बन करके ऊर्ध्वा में द्यौ–लोक में प्रवेश करते रहते हो तो मेरे प्यारे! देखो! वह आज के हमारे वेद के पठन–पाठन, में सोम की प्रतिक्रियाएँ आ रही थीं। **'अग्निं सोमं ब्रह्मावर्ती'** सम्भवः वेद का वाक् कहता है हे अग्नि! तू ही तो सोम कहलाती है तू साम्य कहलाती है। हमारे यहाँ दो प्रकार का सोम बनता रहता है एक तो वनस्पति विज्ञान में, कुछ वनस्पतियों लेकर के उसे अग्नि में तपाते हैं तो जितने साधकजन हैं, जो इस संसार से उपराम होना चाहते हैं, प्रभु के गर्भ में जाना चाहते हैं, उस सोम को पान करते रहते हैं।

भगवान् राम द्वारा सोम उपासना

मुनिवरो! देखो, जब भगवान् राम को वन प्राप्त हो गया था, तो वन के प्राप्त होने पर एक समय वह प्रातःकालीन दण्डक वन में मार्जन और तर्पण कर रहे थे। मार्जन, तर्पण करते हुए जब वेद का अध्ययन करने लगे, तो वेद के अध्ययन में एक वेद मन्त्र आया **'स्मरणं ब्रह्माः सोमं ब्रहे व्रतप्रह्मालो'** वेद मन्त्र यह कहता है कि साधक को सोम का पान करना चाहिए। साधक बनने के लिये सोम का पान करना चाहिए, ब्रह्मवर्चोसि बनने के लिये सोम का पान करना चहिए, और भगवान् राम, लक्ष्मण के समीप विद्यमान हो करके कहने लगे–कि हे लक्ष्मण! हमने गुरुओं के द्वारा बड़ा अध्ययन किया है परन्तु वशिष्ठ और माता अरुन्धती के चरणों में विद्यमान हो करके हमने अपनी सौम्य प्रवृत्ति को बनाते हुए हमने वेदों का अध्ययन किया है, वेद में यह वाक् आ रहा है कि हमें सोम का पान करना है, बिना सोम के पान किये मानव के जीवन की रक्षा नहीं होती। लक्ष्मण ने कहा प्रभु! विचारना चाहिए। सीता को भी अपने समीप नियुक्त करके तीनों प्राणी प्रातःकालीन वेद के मन्त्र को ले करके अध्ययन करने लगे और विचारने लगे। उन्होंने कहा–देवी! यह सोम क्या है? देवी ने कहा–प्रभु निर्णय करो कि यह सोम क्या है? तो मुनिवरो! देखो, उन्होंने विचारते–विचारते यह विचारा कि भयं{कर वनों में मानव को साधना करनी चाहिए और साधना का जो अन्न है उसको सोम कहते हैं। अब साधनावादी को कौन–सा अन्न ग्रहण करना चाहिए? कौन–सा सोम बना करके पान करना चाहिए।

औषधियों द्वारा सोम की उपादेयता

तपस्वी जीवन में भगवान् राम और लक्ष्मण दोनों ने भयं{कर वनों में से वृक्षों को लाना, उसका रस बना करके, अग्नि में तपा करके वह पान करते थे। एक तो जाल के वृक्ष का रस, एक पीपल का रस, एक वट वृक्ष का रस और एक विलंग का रस, एक मीतकेतु वृक्ष का रस, एक कत्मेश्वर होता है

उसका रस, उसमें शङ्खाइली, वाजकेतु इन नाना वनस्पतियों को ला करके दूबकेश्वरी इन सबका रस बना करके प्रातःकालीन अग्नि में तपा करके और उसको जो मानव पान करता है उसका मन स्थिर होने लगता है और मन स्थिर हो करके वासना की प्रवृत्तियाँ समाप्त हो जाती हैं। मेरे पुत्रो! देखो, तीनों महान देवताओं ने अपने 14 वर्ष के जीवन को इन्हीं वनस्पतियों का पान करके बल को परिपक्व बनाया। बल इतना विशाल बन गया था, उनका, तप भी इतना तपों में परिणत हो गया था, जो उनसे वार्ता प्रकट करता रहता था, वही अपने में महान बनता रहता था।

रावण, कुम्भकरण द्वारा सोमपान

मुनिवरो! देखो, इसी का पान करने वाला राजा रावण ने, भारद्वाज मुनि के विद्यालय में, रस का पान किया था। 24 वर्ष का अनुष्ठान राजा रावण के विधाता कुम्भकर्ण ने भारद्वाज मुनि के आश्रम में, ब्रह्मचारी सुकेता ने, ब्रह्मचारी कवन्धी ने इसी सोमरस का पान किया। सोमरस की एक औषध ऐसी होती है जो सोमरस में मिश्रित की जाती है। उसको हमारे यहाँ त्रिवादु कहते हैं, वह वैदिक भाषा में उसे अमरावती व्यंजन कहते हैं। वह हिमालय की कन्दराओं में प्राप्त होती है। उस औषध में यह विशेषता है कि अमावस्या से लेकर के एक–एक पत्ते आते हैं, 15 पत्ते आते हैं जब 16 वॉ पत्ता आता हैं तो एक पत्ता गिरना प्रारम्भ होता है वह गिरते–गिरते **सोमं ब्रह्म** अमावस्या के दिवस तक सब समाप्त हो जाते हैं। पूर्णिमा को पूर्ण होना अमावस्या से अमावस्या तक समाप्त होना, तो मुनिवरो! देखो, उस औषधि को भी सोमरस में मिश्रित कराया जाता है। सोमरस का पान कराया जाता है जो अग्नि में तपा करके उसे नित्यप्रति पान करते हैं।

वैद्य सुषेण द्वारा सोमपान का भौतिक उपयोग

तो मुनिवरो! देखो, वह सोमरस आयुर्वेद की दृष्टि में, आयुर्वेदाचार्यो ने राजा रावण के राष्ट्र में जो सुषेण वैद्यराज था उसके ऊपर बड़ा अध्ययन किया। सुषेण वैद्य इसी औषध को पान करके 2500 वर्ष की आयु का उनका वर्णन आता रहता है। वैदिक साहित्य में हमारे यहाँ देखो, उनके साहित्य में इसी प्रकार रावण इत्यादियों ने भी अपनी आयु को ऊर्ध्वा में परिणत कराया। परन्तु देखो, मैं भगवान् राम, लक्ष्मण सीता की चर्चा कर रहा था। विचार यह मुनिवरो! देखो, यह सोमरस का पान करके और वह अध्ययन करना, विज्ञान में रत रहना, आध्यात्मिकवाद में प्रवेश कर जाना, इनका नित्यप्रति का क्रिया–कलाप रहता था और अपने बल का वर्धन करना, जैसे महर्षि विश्वामित्र के यहाँ जब वह दण्डक वन में धनुर्याग में गये थे तब तक भी ऋषि उनको सोमरस का पान कराते रहते थे। इस सोमरस के पान कराने से उनका जीवन बलिष्ट बन गया, तपस्वी बन करके वह अस्त्रों–शस्त्रों का अध्ययन करते थे और उसको क्रियात्मक में लाने का प्रयास करते थे। वह बलवर्धक है, सात्विक है और महानता में लाने वाला है। परन्तु देखो, एक, दो औषधियों का सोमरस कहा जाता है।

पुत्रेष्टि–याग में सोम व अग्नि

परन्तु मुनिवरो! देखो, एक समय भगवान् राम और लक्ष्मण प्रातःकालीन वेद का अध्ययन करके याग कर रहे थे। जब याग करने लगे अग्न्याधान करके समिधा उसमें परिणत करने लगे तो लक्ष्मण ने वेद का एक मन्त्र उच्चारण किया और लक्ष्मण ने वेद मन्त्र में यह कहा कि **"अग्निं ब्रह्माः अमृतां देवा सोमं प्रह्मवृत्ति देवाः प्राण बृहि वृणीयं ब्रहे"** वेद का वाक् उच्चारण करते हुए लक्ष्मण ने कहा–प्रभु! यह जो याग है, याग की जो अग्नि है यह भी सोम कहलाती है। प्रभु! वह सोम कैसे बनता है देखो, उन्होंने कहा–कि जितनी औषधियाँ, साकल्य जब अग्नि में ध्यान किया जाता है इसमें और वृचिका के वृक्षों की जब समिधा के द्वारा याग करते हैं और जितना भी ऋतु के अनुसार जितने पदार्थ हैं उन सबको साकल्य बना करके अग्नि में चयन करते हैं तो **नासिकां प्रहे प्रज्ञां व्रहे** तो नासिका के द्वारा सोम जाता है जब सोम जाता है तो वही सोम पुत्रेष्टि यागिक जो पुरुष होते हैं वह इस प्रकार के साकल्य को एकत्र करके उसके द्वारा याग करते हैं वह सोम बन करके, वे उन परमाणु को शरीर में जा करके जागरूक कर देते हैं जिन परमाणुओं से पुत्रेष्टि याग करता है। पुत्रेष्टि याग में निहित हो जाता है। इस प्रकार का यह सोम कहलाता है, यह वनस्पतियों का जो रस है यह अग्नि के द्वारा, यह परमाणु में परमाणुओं का मिलान करता रहता है। वह भी एक सोम कहलाता है। एक सोमं ब्रह्माः वह सोम देखो, वह अग्नि अपने में सोम वन करके आपो में मिश्रित हो करके यजमान के जीवन को उद्बुद्ध कर देती है, और यजमान के जीवन की प्रतिभा को महान बना देती है। यह सोम कहलाती है यह भी एक सोम है, यह भी अग्नि का दूसरा रूप है।

शब्द रूपी सोम

मुनिवरो! देखो, यजमान याग कर रहा है और वह सोम को वेद का वाक् पुनः सोम कहता है, अग्नि को सोम बनाना है। अग्नि सौम्य बन जाती है। जब अग्नि में, वायु और अग्नि दोनों का मिश्रण होता है, अग्नि की तरंगों पर जब अपने हृदय की पवित्र भावना के द्वारा वेद मन्त्रों का ज्ञान, जब वेदों का उद्गीत यथार्थ रूप में, शुद्ध रूप में विशुद्धता में परिणत करता है, उद्गाता बन करके, तो वही शब्द विद्यमान हो करके वह ही शब्द सोम कहलाता है देखो, सोम की विवेचना करने वाला ऋषि अपने में महान बनता रहता है और उन्होंने अगले दिन प्रातःकालीन जब याग किया तो माता सीता जी ने वेद का मन्त्र उच्चारण किया।

माता सीता द्वारा सोम की विवेचना

तो मुनिवरो! देखो, माता सीता जी ने कहा **"सम्भवः बृहे लोकां वाचन्नमं प्रिय व्रतं अग्निः"** उन्होंने कहा–हे भगवन्! हम सबने देखो, आचार्य के चरणों में विद्यमान हो करके अध्ययन किया है। यहाँ परमात्मा के समीप जाने का नाम सोम कहलाता है। जो योगाभ्यास अनुष्ठान करने वाले हैं और अनुष्ठान करके जब यह मन, प्राण की धारा में मिश्रित हो जाता है, प्राण और मन दोनों का समन्वय जब हो जाता है, तो यह जो प्रकृतिवाद है इसमें मानव की प्रवृत्तियों का विभाजन हो गया है मानव की प्रवृत्तियों में अशुद्धवाद आ गया है उन **विकलं ब्रह्माः** वह एक विकलम् करता है और वह एक सूत्र में ला करके परमपिता परमात्मा से मिलान करता है, और परमात्मा से मिलान करके वह परमात्मा का और जो भक्त का, परमात्मा का, साधक का, जो मिलान है तो वहाँ परमानन्द की जो प्राप्ति होती है उस एकता के सूत्र में उसे सोम कहते हैं। वह भी सोम कहलाता है।

मुनिवरो! देखो, हमारे वैदिक साहित्य में, वेद के वांगमय में तुम्हें सोम की विवेचना न देता हुआ, केवल यह कि आज हम मुनिवरो! देखो, भिन्न–भिन्न प्रकार के सोम की चर्चाएँ करते रहे हैं। विचार केवल यह कि जिस सोम की रक्षा कर सकें, उस आहार का नाम सोम कहलाता है। यदि हम रक्षा नहीं कर सकते, हम उसको विकृत कर देते हैं, उसको नष्ट करते चले जाते हैं, उस शक्ति को उसकी रक्षा नहीं कर सकते, तो वह हमारे लिये विष कहलाता है। इसीलिये विष को नष्ट करना है सोम को पान करना है। ज्ञान का नाम ही सोम कहलाता है। जब संसार के प्रत्येक पदार्थ का हमें ज्ञान होने लगता है। ज्ञान हो करके हमारा जीवन व्यापक बन जाता है व्यष्टि से समष्टि में प्रवेश कर जाता है बेटा! उस का नाम भी सोम कहलाता है। आज इस सोम के ऊपर विशेष चर्चा तुम्हें प्रगट करना नहीं चाहता हूँ। सोम का अभिप्राय यह है कि हम सोम को अपने आनन्दवत् में लेना प्रारम्भ करें। इस सोम की प्रतिभा को जिससे हमारे जीवन में चंचलता उत्पन्न हो करके साम्यता के भाव उत्पन्न हो जाये, सौम्य ज्ञान की प्रतिभा का जन्म हो जाये, साधक बन करके प्रभु के आनन्दमयी रहस्य को हम अपने में धारण करते चले जायें उसको सोम कहते हैं। मेरे पुत्रो! नाना प्रकार की ज्ञान और विज्ञान में रत रहते हुए ज्ञान

और विज्ञान की प्रतिभा में रत रह करके अपने प्रभु का ध्यानावस्थित होते हुए अपने प्रभु का गुणगान गाते चले जायें, जहाँ हमें व्यापक सोम की प्राप्ति होती है।

जठराग्नि रूपी अग्नि

हे अग्नि! तू मेरे हृदय में जठराग्नि बन करके रहती है। वही जठराग्नि रस बना देती है वही रस प्रत्येक इन्द्रियों को प्राप्त हो जाता है और इन्द्रियाँ शक्तिशाली बन करके वही शब्द के रूप में तेरा रूप प्रगट होने लगता है। यह शब्द ही अग्नि का रूप कहलाता है, यही अग्नि है जो जठराग्नि बन करके रसों को महान बना देती है, रस बना करके वह देववृत्त नेत्रों की ज्योति में प्रवेश हो जाते हैं। वही नेत्रों की ज्योति है। नेत्राणि ब्रह्मा वही नेत्र अग्नि के रूप को धारण करके नेत्र बनने हैं, नेत्रों में ज्योति आती है और उसी ज्योति का हम अनुसन्धान करते हैं वही ज्योति नयी बन करके सूर्य के रूप में दृष्टिपात हो जाती है।

वाह रे मेरे प्रभु! तू तो विज्ञानवेत्ता है। हे अग्नि! तू वही तो सूर्य है **व्रचत्वां ब्रह्माः** उसे अग्नि का ध्यान करते ही तो अग्नि के रूप में दृष्टिपात हो करके नेत्र मृत्यु से पार हो गये हैं। हे अग्नि! तू ही तो नेत्रों से पार करने वाली है, जठराग्नि बन करके जब तू रस बनाती है, अमृतमयी रस बना देती है उसको मानव उसी अमृत में अभ्युदय हो करके वह प्रभु का चिन्तन करता है, वह नेत्रों में देवताओं का चिन्तन करता है और वह चिन्तन करता–करता कहाँ चला जाता है प्रत्येक इन्द्रिय को मृत्यु के पार कर देता है। हे देवत्वं, हे अग्नि! तेरे स्वरूप को जानना ही, तू ही ज्ञानरूपी अग्नि बन करके हमारे हृदयों में प्रविष्ठ होती रहती है। तू ही अग्नि बन करके, तू ही परमाणुओं को अभ्युदय करा करके माता के गर्भ में प्रवेश करके तू हम जैसे पुत्रों को पिण्ड में बना देती है और उसी पिण्ड में अग्नि विद्यमान है। वही अग्नि तो पिण्ड है। वही तो प्राण के रूप में अग्नि सिमट करके पिण्ड बन गयी है। वही तो जल के रूप में अग्नि उसका पिण्ड बना देती है और पिण्ड में भी कितने भिन्न–भिन्न प्रकार हैं। मैं कहाँ चला गया हूँ? मैं कैसे विशाल वन में चला गया हूँ कि उस पिण्ड में ब्रह्माण्ड निहित रहता है। हे अग्नि! तू ही तो ब्रह्माण्ड का पिण्ड बना हुआ है। है अग्नि तू ही तो लोक लोकान्तरों का सूत्र बना हुआ है जिससे एक दूसरा मण्डल–मण्डल में ओत–प्रोत हो करके एक माला दृष्टिपात होती है। यह ब्रह्माण्ड भी पिण्ड है और मानव का शरीर भी पिण्ड है, परन्तु दोनों एक सूत्र में जैसे मनके का समन्वय हो करके माला बनती है। इसी प्रकार यह जगत् चल रहा है।

श्रद्धा–अग्नि

मुनिवरो! देखो, विचार विनिमय क्या? मैं विशेषता में जाना नहीं चाहता हूँ। हे अग्नि! तू ही तो देवत्व कहलाती है। तू देवताओं का दूत है, अग्नि है। यज्ञशाला में इसीलिए यजमान तुझे काष्ठों में ला, काष्ठों के रूप से तेरा सूक्ष्म रूप बना करके, साकल्य दे करके, तुझे वायु में परिणत कर देता है। अपने अन्तर्हृदय में उस सुगन्धिभाव को प्रवेश करता, जिससे श्रद्धामयी ज्योति बन करके वह श्रद्धा अग्नि बन करके प्रकाश देती रहे, मेरे जीवन की प्रतिभा ऊँची बन जाये।

आज बेटा! मैं तुम्हें विचार देता हुआ दूरी न चला जाऊँ, यह मैंने सूक्ष्म से वाक्यों में तुम्हें गागर में सागर की कल्पना की है। आज का वाक् यह कहता है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए, इस संसार सागर से पार हो जायें। आज का वाक् यह क्या कहता है? हे अग्नि! तू हमारे जीवन को उद्‌बुद्ध करने वाली है। हे अग्नि! तू महान है। तू सोम का पान कराने वाली है तू सोम कहलाती है। बेटा! समय मिलेगा तो इससे आगे की चर्चा में कल करूँगा। आज का विचार यह अब समाप्त होने जा रहा है। समय मिलेगा तो मैं शेष चर्चाएँ तुम्हें कल प्रगट करूँगा। आज का वाक् समाप्त,

आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हमारे वैदिक–साहित्य में अग्नि सूक्तों का वर्णन आ रहा था। वह परमपिता परमात्मा सर्वत्र विद्यमान है। इसीलिये मानव जो अपने विचारों को अशुद्ध करता है, वहाँ भी प्रभु विद्यमान है, इसीलिये वह परम फल का दाता है। यह है आज का वाक्, समय मिलेगा मैं शेष चर्चाएँ कल प्रगट करूँगा। अब वेदों का पठन–पाठन।

10 मई 1986
लाजपत नगर